ओ३म्

देवस्य पश्य काव्यम्

(वेदार्थ-मीमांसा)

[आचार्य उदयन मीमांसक, निगमनीडम् – वेदगुरुकुलम्, पिडिचेड़, गज्वेल, सिद्धिपेट,
तेलंगाणा – ५०२२७८; फोन नं. 9440721958]

'कवेरिदं कर्म वा काव्यम्' – कवि के द्वारा रचित व उसके उपदेश रूपी कर्म को काव्य कहते हैं। ईश्वर भी एक महान् एवं आद्य कवि (कवियों का कवि) है– **''गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनाम्''** (ऋ० २.२३.१) ।[१] यह अजर, अमर, नित्य कवि (परमात्मा) अपने उपदेश रूपी कर्म (काव्य) के द्वारा सभी मनुष्यों की रक्षा चारों दिशाओं (सब प्रकार) से सदा करता रहता है – **''पश्चात् पुरस्तादधरादुदक्तात् कविः काव्येन परिपाहि राजन्''** (ऋ० १०.८७.२१) । यहाँ स्पष्ट रूप से ईश्वर के द्वारा उपदिष्ट ज्ञान (वेद) को काव्य कहा गया है । इसीप्रकार अन्यत्र भी बहुत्र वेद के लिए 'काव्यम्' शब्द का प्रयोग हुआ है – **''काव्यं छन्दः''** (यजु० १५.४) ।[२] कविशब्द वेद के लिए भी प्रयुक्त हुआ है । यथा – **''सुपर्णं विप्रा कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति''** (ऋ० १०.११४.५) – ज्ञान से परिपूर्ण करने वाले ज्ञानमय कवि (मन्त्र व वेद) स्तुतिरूपी वाणियों से एक ही ईश्वर को शिव, विष्णु, ब्रह्म, इन्द्र, मित्र आदि अनेकों नामों से वर्णन करते हैं । लोक में कवि[३] और काव्य अलग-अलग होते हैं, पर यहाँ वेद ही कवि है और काव्य भी हैं – **''एते वै कवयः यद् ऋषयः[४]''**(शत० ब्रा० १.४.२.८) ।

काव्य का लक्षण – काव्यशास्त्र के लक्षणकार आचार्यों ने काव्य का लक्षण इसप्रकार किया है –

१. गुणालङ्काररीति[५]रसोपेतः साधुशब्दार्थसन्दर्भः काव्यम् (वाग्भट्टः) ।

२. निर्दोषं गुणालङ्कारलक्षणरीतिवृत्तिमुद्वाक्यं काव्यम् (पीयूवर्ष जयदेवः) ।

३. वाक्यं रसात्मकं काव्यम् (साहित्यदर्पणम् – १.२) ।

४. रमणीयार्थप्रतिपादकशब्दः काव्यम् (पंडितराज जगन्नाथः) ।

इत्यादि लक्षणों से लक्षित मुख्य काव्यत्व वेदों में ही घटित होता है । महाकवि भारवि ने प्रसंगान्तर से वेद के काव्यत्व की प्रशंसा इसप्रकार की है –

प्रसादरम्यमोजस्वि गरीयो लाघवान्वितम्,
साकाङ्क्षमनुपस्कारं विष्वगति निराकुलम् ।
न्यायनिर्णीतसारत्वान्निरपेक्षमिवागमे,
अप्रकम्प्यतयान्येषामाम्नायवचनोपमम् ॥

(किरातार्जुनीयम्– ११.३८.३९)

वेदरूपी काव्य विविध अलंकार, रस आदि से रमणीयार्थप्रतिपादक, स्वरादि से ओजस्वी, अर्थगाम्भीर्य से युक्त, अल्पशब्दों में अनल्पभावों को अभिव्यक्त करनेवाला, परस्पर साकाङ्क्ष पदों से युक्त अर्थात्

---

१. अनन्तमव्ययं कविम् (तैत्तिरीय आरण्यक – १०.१.२) । कविर्मनीषी० (यजु० ४०.८) ।

२. त्रयी वै विद्या काव्यं छन्दः (शत० ब्रा० ८.५.२.४) [छन्दः = वेदः] । प्रत्नं निपाति काव्यम् (ऋ० ९.६.८) [प्रत्नम् = पुरातनम्, प्राचीनम्] ।

३. ये विद्वांसस्ते कवयः (यजु० १२.६७ ; शत० ब्रा० ७.२.२.४) । शुश्रुवांसो हि कवयः (तै० ब्रा० ३.२.२.३) ।

४. ऋषिः = वेदः

५. रीतिरात्मा काव्यस्य । विशिष्टपदरचना रीतिः (काव्यसूत्र १.२.६–७) ।

निराकांक्ष पदों से रहित, अध्याहार्य पदों से रहित, सम्पूर्ण अर्थों का प्रतिपादक, संकुचितार्थक (रूढ़) पदावलि से विहीन, मीमांसा के न्यायों (अधिकरणों) से निर्णीत सारवाला अर्थात् निर्दुष्टार्थक वाक्यप्रबन्ध है, जिसकी प्रामाणिकता अन्यान्य शास्त्रों से नहीं, अपितु स्वतः है।

काव्य पद्यात्मक होता है, तो गद्यात्मक एवं गद्यपद्यात्मक वेदभागों का काव्य नाम कैसे हो सकता है? ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए । क्योंकि काव्य पद्य, गद्य तथा उभयविध भी होता है – **''गद्यं पद्यं च मिश्रं च काव्यं हि त्रिविधं स्मृतम्''** (काव्यालंकारशास्त्रम् – १.८) । अतः ऋग्, यजु, साम और अथर्व सभी वेद काव्यपदवाच्य हैं । काव्य के काव्यत्व को समझने केलिए केवल शब्द-शब्दार्थ का ज्ञान पर्याप्त नहीं होता । उसके लिए उनसे अतिरिक्त शब्दचयनरूपी रीति, रस, अलंकार, स्वर, ध्वनि, छन्दादियों का ज्ञान भी अनिवार्य है ।[६] पर प्रस्तुत लेख केवल छन्दविषय तक ही सीमित है ।

छन्द और शब्द के बीच में एक अविनाभाव (अटूट) सम्बन्ध है । भरतमुनि ने कहा भी है कि - **''छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति, न छन्दः शब्दवर्जितम्''** (नाट्यशास्त्रम् – १५.४२) छन्द रहित न कोई शब्द है, न ही शब्दरहित कोई छन्द है । यहाँ शब्द का तात्पर्य गद्य, पद्य व मिश्रित काव्य अभिप्रेत है । काव्य की गति लय, यति, रस, माधुर्य आदियों पर आश्रित होती है । रस, माधुर्य आदि व्यञ्जनध्वनियों से उत्पन्न होते हैं, क्योंकि व्यञ्जन वर्णों से नादसौन्दर्य प्रकट होता है । स्वर (अच्) वर्णों (अक्षरों) से छन्दनिर्मित होते हैं, क्योंकि अचों का धर्म है – ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत आदि । इन्हीं ह्रस्वादियों से छन्दों का निर्माण होता है । इसीलिए काव्यों में व्यञ्जन शरीर हैं, तो स्वर (अज्ध्वनियाँ) प्राण हैं । उस प्राणभूत स्वरों से उत्पन्न छन्द काव्य का जीवन (मूलभूत आधार) है । इसीलिए आचार्य दण्डी काव्य में छन्द के महत्व को बतलाते हुए कहते हैं कि काव्यरूपी विशाल एवं गहन सागर का पार करने के इच्छुक व्यक्ति को छन्दोविद्या (छन्दोज्ञान) नाव जैसा उपयोगी है –

छन्दोविचित्यां सकलस्तत्प्रपञ्चो निदर्शितः ।
सा विद्या नौस्तितीर्षूणां गम्भीरं काव्यसागरम् ।। (काव्यादर्श – १.१२)

ऐतरेय ऋषि ने भी वाणी (छन्दोमय ज्ञान) की समुद्र से तुलना की है – **''वाग्वै समुद्रः, न वै वाक् क्षीयते, न समुद्रः क्षीयते''** (ऐ०ब्रा० ५.१६) । ऐसे अक्षय समुद्रभूत वेदवाणी का तरण नावरूपी छन्दों से होता है – **''छन्दोभिर्वै देवाः सुवर्गं लोकमायन्''** (तै०सं० ५.२.३.४), **''छन्दोभिर्हि स्वर्गं लोकं गच्छन्ति''** (शत० ब्रा० ६.५.४.७) ।

श्लोकात्मक पाणिनीयशिक्षाकार ने भी वेदरूपी ब्रह्मलोक में विचरने (समझने) हेतु छन्द को वेदपुरुष के पाद माने हैं – **''छन्दः पादौ वेदस्य...तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते''** (४२) । पैरों के विना जिसप्रकार गति (गमन) सम्भव नहीं है, उसी प्रकार छन्दोज्ञान के विना वेदार्थ में गति (अवगति, बोध) सम्भव नहीं है अर्थात् वेदार्थावगति के लिए पैरों के समान छन्दोज्ञान प्राथमिकतया अनिवार्य है ।

आचार्य शौनक ने भी कहा है कि –

''ऋषिं तु प्रथमं ब्रूयाच्छन्दस्तु तदनन्तरम् ।
देवतामथ मन्त्राणां कर्मस्वेवमिति श्रुतिः ।।'' (बृहद्देवता – ८.१३८)

मन्त्रार्थ जानने केलिए सर्वप्रथम उस मन्त्र के ऋषि को जानना होगा[७], उसके पश्चात् छन्द और देवता को जानकर उस मन्त्र का कर्मों में विनियोग करना चाहिए अर्थात् कर्म के माध्यम से आध्यात्मिक आदि अर्थों को जानना चाहिए ।

''नियमोऽयं जपे होमे ऋषिश्छन्दोऽथ दैवतम् ।
अन्यथा चेत्प्रयुञ्जानस्तत्फलाद्यात्र हीयते ।।

---

६. इसके लिए लेखक के लेख 'वेदार्थ और भाषाविज्ञान के शाश्वत नियम' (वेदवाणी, नवम्बर २०१६) और 'ऋषिमीमांसा' (वेदवाणी, नवम्बर २०१८) भी द्रष्टव्य हैं ।

७. मन्त्रार्थ में ऋषि की उपयोगिता को जानने के लिए लेखक का 'ऋषि-मीमांसा' लेख (वेदवाणी, नवम्बर २०१८) द्रष्टव्य है ।

ऋषिच्छन्दोदैवतादि ज्ञानं यज्ञादिषु श्रुतम् ।
तदाश्रित्य प्राणदृष्टिर्विपितात्रेति गम्यताम् ।।
अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं [8]योगमेव च ।
योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जायते तु सः ।।''

(बृहद्देवता ८.१३४–१३६) ।

अन्य आचार्यों के मन्तव्य भी इसीप्रकार के हैं –

''यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दो दैवतब्राह्मणेन मन्त्रेण यजति याजयति वाऽध्यापयति वा स्थाणुं वर्च्छति गर्ते वा पात्यते प्रमीयते पापीयान् भवति...तस्मादेतानि मन्त्रे मन्त्रे विद्यात्'' (आर्षेयब्राह्मण– १.१.६) । अपि च द्रष्टव्य– ऋक्सर्वानुक्रमणी – परिभाषा ३) । इसी अभिमति के अनेकों आचार्यों के वचनों को ऋक्सर्वानुक्रणी के परि० २ के सूत्रभाष्य में षड्गुरुशिष्य ने उद्धृत किये हैं । वे वहीं द्रष्टव्य हैं ।

छन्दःपद का अर्थ और निर्वचन –

१. चन्देरादेश्च छः (उणादि० ४.२२०) – **चन्दयत्याह्लादयति, चन्द्यतेऽनेनेति वा छन्दः** अर्थात् रमणीयार्थता से, काव्यत्व से आनन्दित करने वाले मन्त्रादियों को 'छन्दः' कहा जाता है । यहाँ **'चदि आह्लादने दीप्तौ च'** (भ्वा० ५६) धातु से छन्दः शब्द व्युत्पन्न हुआ है ।

२. तान्यस्मा (प्रजापतये) अच्छदयंस्तानि यदस्मा अच्छदयँस्तस्माच्छन्दांसि (शत० ब्रा० ८.५.२.१) उन्होंने प्रजापति को बलवान् या प्राणवान् किया, इसलिए इनको छन्द कहते हैं । इससे यह निर्वचन लक्षित होता है कि **''छदयन्ति बलवन्तं प्राणवन्तं वा कुर्वन्तीति[9] छन्दांसि''** । यहाँ छद अपवारणे (चुरादि० २६०) धातु से छन्दः शब्द निष्पन्न है ।

३. देवा असुरान् हत्वा मृत्योरबिभयुस्ते छन्दांस्यपश्यंस्तानि प्राविशंस्तेभ्यो यद्यदछदयत्तेनात्मानमछादयन्त, तच्छन्दसां छन्दस्त्वम् (मै०सं० ३.४.७; तुलना – तै०सं० ५.६.६.१, जै० ब्रा० १.२८४, ऐ० ब्रा० २.१.६, छां० उप० १.४.२, निरु० ७.१२, ऐ०आ० २.१.६) । देवता असुरों को मारकर मृत्यु से डरने लगे, वे छन्दों (मन्त्रों) को अपने रक्षकों के रूप में देखकर, उनसे अपने आपको आच्छादित किया, यही (आच्छादन ही) छन्दस्त्व है ।

इन निर्वचनों का तात्पर्य यह निकलता है कि – सतत वेदाध्ययन करते हुए, तद्विहित यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान करते हुए दुःखकारक पापादि से दूर हों और परमात्मा की सन्निधि की ओर अग्रसर होते हुए आनन्दित होना एवं मृत्युञ्जय बनना यही आत्मपथ का रक्षात्मक आच्छादन है, यही छन्दस्त्व है । वेदमन्त्रों का यही छन्दस्त्व शतपथब्राह्मण (१.१.४.१–४) में भिन्नरूप में वर्णित है । हम यहां उसका सारमात्र प्रस्तुत कर रहें हैं – ''यजमान (पुरोडाश के निर्माण हेतु) यज्ञ पूर्णता के लिए कृष्णमृग के चर्म (कृष्णाजिन) का ग्रहण करता है,'' क्योंकि यज्ञ देवों से दूर होकर कृष्णमृग बनकर विचरने लगा । देव उसे पहचान कर मृग के चर्म का ग्रहण किया । उसके जो काले वर्ण के लोम हैं, वे ऋचाओं के प्रतीक हैं, जो शुक्ल वर्ण के लोम हैं, वे साममन्त्रों के द्योतक हैं और जो बभ्रू व हरित वर्ण के लोम हैं, वे यजुर्मन्त्रों के सूचक हैं, अर्थात् कृष्णाजिन त्रयीविद्या का बोधक है और यह त्रयीविद्या ही यज्ञ है **(सैषा त्रयी विद्या यज्ञः)** । उसी में यज्ञ की सम्पूर्णता है, इसीलिए दीक्षाकाल में यजमान कृष्णाजिन का धारण करता है, अपने को उससे आच्छादित करता है । मानो वह त्रयीविद्या से अपने को आच्छादित किया है । उससे वह मृत्युभय से दूर होकर अमर होजाता है, 'शम्' को प्राप्त करता है । 'चर्म' के धारण से 'शर्मा' (सुखी) बन जाता है । त्रयीविद्या (ऋक्, यजुः, साम मन्त्र) रूपी आच्छादन के द्वारा मृत्युभय से दूर होकर आनन्द (शर्म) को प्राप्त होना ही मन्त्रों का

---

८. योगम् = प्रयोगम् ।

९. चौरादिकस्य स्वार्थे णिजभावे मित्वार्थोऽयमनुवादः । अनेकार्थत्वाद् ऊर्जेरर्थे वृत्तिः । छदन्तं प्रयुङ्क्ते छन्दयति । बलवन्तं प्राणवन्तं वा करोतीत्यर्थः । अन्यत्र छादयति ।...बलीभवति, प्राणीभवति अपवारयति वेत्यर्थः (सिद्धान्तकौमुदी – धातु० ८१३) ।

छन्दस्त्व (छन्दःपन) है।

अभी तक हमने मन्त्रों के छन्दःसामान्य को देखा है। अब छन्दोविशेष की ओर प्रस्थान करते हैं। **''अक्षरेण मिमते सप्त वाणीः''** (ऋ० १.१६४.२४)।[१०] अक्षर (के संख्याभेद) से वेदवाणी (वेद के सभी मन्त्र) सात प्रकार से विभाजित (परिमापित) की जाती है। संख्याभेद के प्रकार को स्पष्ट करता हुआ अथर्ववेद कहता है कि - **''सप्त छन्दांसि चतुरुत्तराण्यन्योऽन्यस्मिन्नध्यार्पितानि''** (अथर्व० ८.९.१९) सात विभगों में विभक्त चारों वेदों के सभी मन्त्र चार-चार अक्षरों की वृद्धि से एक दूसरे पर आधारित होते हैं।[११] वे सात छन्द कौन-कौन से हैं- **गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब्जगत्यै** (अथर्व० १९.२१.१)। ऋग्वेद में भी कहा गया है कि –

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वोष्णिहया सविता सम्बभूव ।
अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान् बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ।।
विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्नः ।
विश्वान् देवान् जगत्या विवेश तेन चक्लृप्त ऋषयो मनुष्याः ।।

(ऋ० १०.१३०.४–५)

इन मन्त्रों में गायत्री आदि सात छन्दों के नाम और उनका अग्नि आदि देवताओं के साथ सायुज्य (सम्बन्ध) का भी स्पष्ट वर्णन है। पिंगल छन्दःसूत्र (३.६३) में भी इसी प्रकार के सम्बन्ध का वर्णन है। वह इस प्रकार है –

छन्द	**अक्षर**	**देवता**[१२]
गायत्री	२४	अग्नि
उष्णिक्	२८	सविता
अनुष्टुप्	३२	सोम
बृहती	३६	बृहस्पति
पंक्ति	४०	मित्रावरुण
त्रिष्टुप्	४४	इन्द्र
जगती	४८	विश्वेदेव

यजुर्वेद (१४.१८–२०) में भी कुछ अन्य छन्दोनामों का लोक तथा देवता के सम्बन्ध के साथ निर्देश प्राप्त होता है –

छन्द	**लोक**	**देवता**[१३]	**छन्द**	**लोक**	**देवता**
मा	पृथिवी	अग्नि	बृहती	मनः	आदित्य
प्रमा	अन्तरिक्ष	वात	अनुष्टुप्	कृषि	मरुत्
प्रतिमा	द्यौ	सूर्य	विराट्	हिरण्य	विश्वेदेव
अस्त्रीवय(उपमा)	समा	चन्द्रमा	गायत्री	गौ	बृहस्पति
पंक्ति	नक्षत्र	वसु	त्रिष्टुप्	अजा	इन्द्र
उष्णिक्	वाक्	रुद्र	जगती	अश्व	वरुण

छन्द, लोक एवं देवताओं का यह सम्बन्ध शतपथ ब्रह्मण (८.३.३.५–६) में भी इसीप्रकार प्रदर्शित है। वैदिक छन्द इनसे अतिरिक्त और भी हैं। उन सबके ज्ञान के लिए म.म. पं. श्री युधिष्ठिर जी मीमांसक

---

१०. सप्त हस्तासः (ऋ० ४.५८.३)= सप्त छन्दांसि (निरु० १३.७)। सप्त वाणीः = गायत्र्यादिसप्तछन्दोन्विताः वेदवाचः (दया०, ऋ०१.१६४.२४)। अभि वाणीर्ऋषीणां सप्त नूषत (ऋ०९.१०३.३) = वेदों की सप्तविध वाणियाँ (छन्द) स्तुतियाँ करती हैं।
११. चतुरुत्तरैरेव छन्दोभिरेतव्यम् ।। पशवो वै चतुरुत्तराणि छन्दांसि, पशुभिरेव तत् स्वर्गं लोकमाक्रममानयन्ति ।। (ताण्ड्यमहाब्राह्मण – ४.४.५–६)।
१२. तै०सं० (३.१.६.२-३) में इन्हीं छन्दों का देवताभेद से उल्लेख मिलता है।
१३. तुलना– मै०सं० २.१४।

का 'वैदिक छन्दो मीमांसा' ग्रन्थ द्रष्टव्य है। गायत्री आदि छन्दों की उक्त अक्षरसंख्या नियत नहीं है, प्रायिक है। एक–दो अक्षर न्यून व अधिक होने पर भी छन्द वही माना जाता है, ऐसा ब्राह्मणकार आचार्यों ने निर्देश किया है – **न वा एकेनाक्षरेण छन्दांसि वियन्ति न द्वाभ्याम्** (ऐ० ब्रा० १.६; २.३७); **न ह्येकेनाक्षरेणान्यच्छन्दो भवति नो द्वाभ्याम्** (कौ.ब्रा. २७.१); **नाक्षराच्छन्दो व्येत्येकस्मान्न द्वाभ्यां न स्तोत्रियया स्तोमः** (शत० ब्रा० १२.२.३.३)। ऐसी स्थिति में छन्दोलक्षणकार आचार्य पिंगलादियों ने एक व्यवस्था दी है। जैसे गायत्री आदि छन्दों की निर्दिष्ट संख्या से एक संख्या न्यून होने पर छन्दोनाम में 'निचृत्' विशेषण जुड़ जाता है, यथा – २३ अक्षर का मन्त्र निचृत् गायत्री। दो अक्षर न्यून होने पर 'विराट्' विशेषण का प्रयोग होता है, यथा– २२ अक्षर का मन्त्र विराट् गायत्री। एक अक्षर अधिक होने पर 'भुरिक्' विशेषण लगाया जाता है, यथा– २५ अक्षर का मन्त्र 'भुरिक् गायत्री' संज्ञक होजाता है और दो अक्षर अधिक होने पर छन्दोनाम 'स्वराट्' विशेषण से विशिष्ट होजाता है, यथा– २६ अक्षर का मन्त्र 'स्वराट् गायत्री' संज्ञक हो जाता है, अस्तु।

किसी भी शास्त्र में उसका अपना विषय सम्पूर्णतया प्रतिपादित नहीं किया जा सकता। हाँ अधिकतम विषय प्रतिपादित हो जाता है और वह अनुक्त विषय के ऊह के लिए अच्छा मार्गदर्शक भी होता है। जैसे कि व्याकरणशास्त्र में असमाहित वैदिक व लौकिक शब्दों की व्युत्पत्ति के लिए पाणिनि ने व्यत्यय, बहुल, पृषोदरादि का विधान कर शास्त्रीय ऊह के लिए स्वतन्त्रता एवं व्यापकदृष्टि प्रदान की है। उसी प्रकार छन्दःशास्त्र में प्रतिपादित छन्दों के अतिरिक्त छन्द[१४] या अपवादभूत मन्त्र भी प्राप्त होंगे, इतने मात्र से मन्त्रसंहिताओं को अव्यवस्थित, अनियत संग्रह है अथवा वे अशास्त्रीय हैं, ऐसी आशंका कदापि नहीं करनी चाहिए। क्योंकि प्रत्येक शास्त्रकार को अपने शास्त्र को गौरवदोष से बचाना और लाघवगुण से विभूषित करने का उद्देश्य सदा बना रहता है, जिससे कि जिज्ञासु लोग उत्साह से शास्त्रीयाध्ययन में संलग्न हों, कदापि शास्त्रों से विमुख न हों, अस्तु।

अब हम शब्दार्थ में छन्द की क्या उपयोगिता है? इस विषय पर विचार करते हैं। छन्द काव्य का एक अभिन्न एवं अनिवार्य अंग है और वह अर्थ के माध्यम से देवों (विद्वानों व दिव्यता के अभिलाषी आत्माओं) का संरक्षक है, ऐसा पूर्व में जाना जा चुका है अर्थात् अर्थाभिव्यक्ति के माध्यम से छन्द आध्यात्मिक पुरुषों का रक्षक व मार्गदर्शक होता है। वह किस प्रकार होता है? इसे समझने का प्रयास करते हैं। वेदमन्त्रों का अर्थ देवता के आधार पर करना चाहिए यह तो सर्वविदित है, पर **अग्नि आदि देवताओं का अर्थ अनेक व अनिश्चित हैं। उनमें से किसी एक अर्थ को सुनिश्चित करने के लिए ही ऋषि, छन्द, स्वर आदि का ज्ञान अनिवार्य होता है,** ऐसा पूर्वाचार्यों का मत है। ऋषि के विषय में हम पूर्व में 'ऋषिमीमांसा' लेख लिख चुके हैं। अब अर्थविज्ञान में छन्दोविज्ञान की क्या उपयोगिता है? इसे समझने का प्रयास करते हैं।

१. गायत्री छन्द – गायत्री छन्द में तीन पाद होते हैं[१५], ये तीन पाद तीन लोक, तीन सवन आदियों के द्योतक हैं[१६], प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते हैं और वे आठ अक्षर आठ वसुओं के प्रतीक हैं।[१७] गायत्री के तीनों पादों में चौबीस अक्षर होते हैं, वे अक्षर संवत्सर के २४ अर्धमासों (पक्षों) के बोधक हैं। यह

---

१४. असंख्येयप्रमाणानि वृत्तान्याहुरतो बुधाः (नाट्यशास्त्रम् – १५.५०)। नाट्यशास्त्र में गायत्री छन्द के ६४ भेद, उष्णिक् के १२८ भेद, अनुष्टुप् के २५६ भेद, बृहती के ५१२ भेद, पंक्ति के १०२४, त्रिष्टुप् के २०४८ भेद, जगती के ४०९६ भेद, ...उत्कृति के ६,७१,०८,८६४ भेदों का वर्णन है (भ० ना० शा० १५.५२–७८)। सभी छन्द प्रयोग के अधीन हैं, क्योंकि सभी छन्द प्रयोग में नहीं आते हैं – ''प्रयोगजानि सर्वाणि प्रायशो न भवन्ति हि'' (भ० ना० शा० १५.५१)।

१५. त्रिपदा गायत्री (जै० ब्रा० ३.६, तां० ब्रा० १०.५.४)।

१६. गायत्री वै प्रातःसवनं वहति, गायत्री माध्यन्दिनं सवनं, गायत्री तृतीयसवनं (जै० ब्रा० १.२८९)। इमे वै लोकाः गायत्री (तां० ब्रां० १५.१०.९)। अपि च द्र० मै०सं० ४.६.४।

१७. अष्टौ वसवोऽष्टाक्षरा गायत्री (तै० सं० ३.४.९.६–७)। अष्टाक्षरा गायत्री (ऐ०ब्रा० २.१७)। बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत् (तै०सं० १.७.११.१)।

संवत्सर ओज, वीर्य, अन्नादि का प्रतीक है ।[१८] गायत्री छन्द पृथिवीलोक का प्रतिनिधि है ।[१९] गायत्री की उपासना करने वाला जीवात्मा श्येन (तीव्रगतिशील) होकर शीघ्र ही द्युलोक पहुँचकर वहां सोम (परमात्मा के आनन्दरस) को प्राप्त करता है ।[२०] इसीलिए गायत्री को ब्रह्म व ब्रह्मवर्चस् या तेज कहा गया है ।[२१] सोम के आहरण के कारण गायत्री छन्द को यज्ञ का मुख[२२], एवं सभी छन्दों में मुख्य, शिरःस्थानीय और तेज कहा गया है[२३] और वह अपने तेज से पापों का हनन करता है ।[२४] इसी तेजस्विता के कारण गायत्री छन्द को अग्नि कहा गया है, या इसका देवता अग्नि माना गया है ।[२५] आर्षेय ब्राह्मणकार कहते हैं कि गायत्री छन्द का ऋषि पुष्कल है और देवता अग्नि है।[२६] पाप, अन्धकार आदि का नाश कर ब्रह्म एवं ब्रह्म के आनन्द रस (सोम) को प्राप्त कराने के कारण गायत्री छन्द को ब्राह्मण ही कह दिया गया है ।[२७] गायत्री वसुओं (ब्रह्मचारियों) की पत्नी (संरक्षिका) है ।[२८] यह गायत्री प्राणस्वरूपक है ।[२९]

ऋषियों के इन विचारों से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि – यज्ञ एवं उसके अवयवभूत तीन सवन, तीनों लोक, आठ वसु एवं वसुब्रह्मचारी, संवत्सर के पक्ष (अर्धमास), ऋतु, मास, अहोरात्र आदि, अन्न, वीर्य, ओज आदि की प्राप्ति, आध्यात्मिक उच्चतम ज्ञान या प्रगति के उपाय[३०], ब्राह्मण्य की प्राप्ति, ब्रह्म (ईश्वर) की प्राप्ति, पापादि की विमुखता, प्राणविद्या, अग्निविद्या, भूविज्ञान, प्राची दिशा का विज्ञान[३१], वर्ष का आरम्भ अर्थात् वसन्त ऋतु का वर्णन, सोमविज्ञान, ब्रह्मलोक का ज्ञान, आत्मविज्ञान, ब्रह्मवर्चस्, ब्रह्मविद्या, स्तुति का प्रकार[३२], देवासुरों का स्वरूप, वायुविज्ञान, मनोविज्ञान[३३], सुवर्ण–विज्ञान[३४], पशुसम्पदा की प्राप्ति[३५], चक्षुर्ज्ञान व चाक्षुष्मत्व[३६] इत्यादि विषयों के प्रतिपादन के लिए गायत्रीछन्द उपयुक्त है और गायत्रीछन्दस्क मन्त्रों के देवतावाचक अग्नि आदि पदों का अर्थ भी इन्हीं विषयों के अनुकूल कर मन्त्रार्थ जानना चाहिए । इतना ही नहीं इन विषयों की प्राप्ति के लिए उस उस अर्थके अनुकूल गायत्रीछन्द वाले मन्त्रों का विनियोग व स्तुति कर अभीष्ट सिद्ध कर सकते हैं । यथा– **''गायत्रीषु स्तुवन्ति प्रतिष्ठायै ब्रह्मवर्चसाय''** (तां० ब्रा० १२.९.२३, १३.३.२५ आदि); **''गायत्रीषु पुरुषकामायोक्थानि प्रणयेयुः''** (तां० ब्रा० ८.१०.३) आदि । त्रिवृत्सोम, गायत्री छन्द, अग्निदेवता, ब्राह्मणमनुष्य और वसन्त–ऋतु ये सभी ब्रह्म

---

१८. चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री (तै०सं० २.५.१०.३), चतुर्विंशतिर्गायत्र्या अक्षराणि, चतुर्विंशतिस्संवत्सरस्यार्धमासाः...ओजो वै वीर्यं भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते, स निर्वीर्यः पराभवति (काठ०सं० १०.७) । संवत्सरो वै गायत्री (तै०सं० २.४.३.२) ।

१९. अयं वै (भू)लोकोऽगायत्री (ऐ०आ० १.४.३, तां० ब्रा० ७.३.९) ।

२०. काठ० सं० २१.४, मै०सं० ४.१.१, शत०ब्रा० ३.४.१.१२ आदि ।

२१. ब्रह्म वै गायत्री (मै०सं० ४.७.३, ऐ०ब्रा० ४.११) । ब्रह्मवर्चसं वै गायत्री (तै०सं० २.५.१०.२, शत० ब्रा० ४.२.४.२०) ।

२२. यदेवादस्सोममाहरत्, तस्मात् गायत्री यज्ञमुखम्, तस्मात्तेजस्विता (काठ० सं० २३.१०) ।

२३. गायत्री छन्दसाम् (मुखम्), (तां० ब्रा० ६.१.६), मुखं गायत्री (छन्दसाम्) (जै०ब्रा० २.१३) । गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता, शिरः (शत०ब्रा० १०.३.२.१), गायत्रं वै व्रतस्य शिरः, तद्धि ब्रह्म (जै० ब्रा० २.४१५) ॥ गायत्री सर्वाणि छन्दांस्यपियन्ति (जै० ब्रा० १.२९०) । ज्योतिर्वै गायत्री (छन्दसाम्) (तां० ब्रा० १३.७.२), तानीमानि छन्दांस्यब्रुवन्नियं (गायत्री) वाव नः श्रेष्ठेयं वीर्यवत्तमा, या सोममाहार्षीत् (जै०ब्रा० १.२८९) । ज्येष्ठ्यं वै गायत्री (जै० ब्रा० २.३४६) ।

२४. तेजो वै गायत्री, तमः पाप्मा रात्रिः, तेन तेजसा (गायत्र्या) तमः पाप्मानं (रात्रिं) तरन्ति (गो० ब्रा० २.५.३) ।

२५. गात्री छन्दोऽग्निर्देवता (शत० ब्रा० १०.३.२.१), अग्निर्हि गायत्री (जै० ब्रा० ३.१८४); अपि च द्र० शत० ब्रा० १.८.२.१३ आदि।

२६. गायत्रं पौष्कलमाग्नेयम् (आ०ब्रा० १.१.१४) ।

२७. गायत्रछन्दा वै ब्राह्मणः (तै०सं० १.१.९.६) ।

२८. गायत्री वसूनाम् (पत्नी) (मै०सं० १.९.२) ।

२९. प्राण एव **गायत्री (जै० ब्रा० २.५८), यो वै स प्राणः, एषा सा गायत्री (शत०ब्रा० ७.५.१.२१) । प्राणो वै गा**यत्री (मै०सं० २.४.४)।

३०. प्रेति च वा एति च गायत्र्यै रूपम् (जै० ब्रा० ३.१२) ।

३१. गायत्री वै प्राची दिक् (शत० ब्रा० ८.३.१.१२) ।

३२. गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मणः (दै०ब्रा० ३.२) ।

३३. मनो वै गायत्रम् (जै०ब्रा० ३.३०५) ।

३४. सुवर्णं गायत्रम् (शांखा० आ० ११.७) ।

३५. पशवो गायत्री (जै० ब्रा० २.३११), गायत्राः पशवः (तै०सं० ३.२.९.१) ।

३६. गायत्रं चक्षुः (तै०सं० ४.१.१०.५, मै०सं० २.७.८, का० सं० १६.८) ।

के मुख से ही उत्पन्न हुए हैं[३७], इसलिए इनमें परस्पर सम्बन्ध रहना स्वाभाविक है। पीछे हमने देखा था कि एक-दो अक्षर कम व अधिक होने पर भी छन्द का नाम वही बना रहता है, केवल विशेषण बदलते हैं। उस व्यवस्था के रहने पर भी कुछ विशेष परिस्थिति में छन्दोनिर्णय में संशय उत्पन्न होता है। यथा – २६ अक्षर के मन्त्र को गायत्री की अपेक्षा से दो अक्षर अधिक होने से उसका छन्द 'स्वराड् गायत्री' माना जाय? अथवा उष्णिक् की अपेक्षा से दो अक्षर कम होने से 'विराड् उष्णिक्' माना जाय? इस संशय का भी समाधान उक्त गायत्री के प्रतिपाद्यविषयों या वक्ष्यमाण उष्णिक् के प्रतिपाद्य विषयों के आधार पर हो सकता है– **''आदितः सन्दिग्धे, देवतादितश्च''** (पिंगलछन्दसूत्र– ३.६१, ६२)।

२. उष्णिक् छन्द – उष्णिग् उत्स्नानात्, स्निह्यतेर्वा कान्तिकर्मणोऽपि वा, उष्णीषिणो वेत्यौपमिकम् (दै०ब्रा० ३.४, निरु० ७.१२) उत्कृष्ट पवित्रता जिससे प्राप्त होता है, उसे उष्णिक् कहते हैं, जो छन्द अधिक प्रिय हो, वह भी उष्णिक् कहलाता है, अथवा जैसे पगड़ी शिर के चारों ओर लपेटी जाती है, उसी प्रकार गायत्री के आठ-आठ अक्षर के पादों में एक-एक अक्षर का आवेष्टन (वृद्धि) करने से ९×३=२७ अक्षर का उष्णिक् छन्द सम्पन्न होता है। उष्णिक् छन्द त्रिपाद् और चतुष्पाद् भी होता है। **''अष्टाविंशत्यक्षरा उष्णिक्''** (कौ०ब्रा० २६.१., जै०ब्रा० १.३१) अर्थात् ७+७+७+७=२८ अक्षरों का उष्णिक् छन्द होता है।[३८] २७ (सप्तविंशति) अक्षर का तात्पर्य हाथ और पैर की दस-दस अंगुलियाँ बीस होती हैं और शिर के दो–दो कान, चक्षु, नाक के छिद्र एवं एक मुख मिलाकर सात अवयव होते हैं, सब मिलाकर २७ होते हैं – **''दश हस्त्या अंगुलयो, दश पद्या, सप्त शीर्षन् प्राणाः तत् सप्तविंशतिः''** (जै०ब्रा० ३.३१९)। इनमें पुरुष (आत्मा) को मिलाने से अष्टाविंशति संख्या की पूर्ति होती है। इसीलिए **''औष्णिहो वै पुरुषः''** (ऐ०ब्रा० ४.३) कहा गया है अर्थात् पुरुषविज्ञान उष्णिक् छन्द का विषय है। पुरुष सप्ताश्व (या सप्तरश्मि, सप्तार्चि– प्रश्नो० ३.५) वाला होता है, वे अश्व हैं – दो आँख, दो श्रोत्र, दो कान और एक मुख। उष्णिक् छन्द के प्रत्येक पाद में विद्यमान सात-सात अक्षर इन्हीं के बोधक हैं और इनका विषय इस छन्द का प्रतिपाद्य है। उष्णिक् छन्द में चार पाद होने से पादसामान्य से इसे 'पशु' कहा गया है– **''पशवो वा उष्णिक्''** (तां०ब्रा० ८.१०.४, जै० ब्रा० १.२२९)। इस छन्द को देवपुरा भी कहा गया है– **''देवपुरा वा एषा यदुष्णिहः''** (जै० ब्रा० १.२२७)। इसे चक्षुस्थानीय एवं पूषादेवताक भी कहा गया है– **''उष्णिक् छन्दः तच्चक्षुः, पूषा देवता''** (मै० सं० २.१४)। पर अन्यत्र 'विश्वेदेव' देवता माना गाय है– **''विश्वे देवा देवतोष्णिहा छन्द आग्रयणस्य पात्रमसि''** (तै० सं० ३.१.६.३)। ऋक्प्रातिशाख्य (१७.२) में 'आदित्य' देवता माना गया। ऋ० १०.१३०.४ में एवं पिङ्गलछन्द (३.६३) आदि में सविता देवता माना गया है।[३९] यह छन्द यजमान विषयक होता है– **''यजमानच्छन्दसमेषोष्णिक्''** (कौ० ब्रा० १७.२)।

इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि – आत्मादि की पवित्रता एवं प्रियता, मधुरता, वृद्धि, पशुसम्पदा, देवपुरी शरीर का विज्ञान, आत्मविज्ञान, चक्षुर्विज्ञान, ज्ञानविज्ञान, पूषा, विश्वेदेवता, आदित्य, सविता देवताओं का वर्णन, द्युलोक का विज्ञान आदित्य और उसका रश्मिविज्ञान आदि विषयों के वर्णन के लिए उष्णिक् छन्द उपयोगी है।[४०]

३. अनुष्टुप् छन्द – अनुष्टुप् छन्द ३२ अक्षर का होता है।[४१] दक्षिणाग्नि भी ३२ अङ्गुल का होता है, इसीलिए अनुष्टुप् छन्दों से ही उसका निर्माण आदि कार्य होते हैं।[४२] इस छन्द में आठ-आठ अक्षर के

---

३७. सोऽकामयत यज्ञं सृजेयेति, स मुखत एव त्रिवृतमसृजत, तं गायत्रीछन्दोऽन्वसृज्यत, अग्निर्देवता ब्राह्मणो मनुष्यो वसन्त ऋतुस्तस्मात् त्रिवृत् स्तोमानां मुखं, गायत्री छन्दसां (मुखम्), अग्निर्देवतानां (मुखम्), ब्राह्मणो मनुष्याणां (मुखम्), वसन्त ऋतूनां (मुखम्)। ब्राह्मणो मुखेन वीर्यङ्करोति मुखतो हि सृष्टः (तां० ब्रा० ६.१.६)।

३८. अष्टाविंशत्यक्षरा उष्णिक् (कौ०ब्रा० २६.१), जै० ब्रा० १.३१)। यस्य सप्त ता उष्णिहम् (अभिसम्पद्यन्ते) (कौ० ब्रा० ९.२)। यहाँ सात का तात्पर्य 'सप्तराशि' या 'सप्तरश्मि' है। सर्पणशील को सात कहते हैं, ऐसे सर्पणशील सात रश्मि ही पुत्र (संरक्षक) हैं जिसके, ऐसे आदित्य को 'सप्तपुत्र' कहते हैं – सप्तपुत्रम् = सप्तमपुत्रं सर्पणपुत्रमिति वा (निरुक्त ४.२६)।

३९. उष्णिक् छन्दः सविता देवता ग्रीवाः (शत० १०.३.२.२)।

४०. उष्णिहम् = उष्णिहा प्रतिपादितम् [इन्द्रियम् = जीवस्य लिङ्गम्] (दया०, यजु० २८.२५)।

४१. द्वात्रिंशदक्षरानुष्टुप् (तै० सं० २.५.१०.३)।

४२. द्वात्रिंशदङ्गुलो भवति (दक्षिणाग्निः। अनुष्टुभा सम्मितोऽनुष्टुभा वीर्यं करोति, अनुष्टुभैव वीर्येण यजमानं समर्धयति (काठकसं० १६.)।

चार पाद होते हैं ।[४३] यह अष्टाक्षरत्व गायत्री का अनुकरण है ।[४४] अनुष्टुप् को वाग्रूप माना गया है ।[४५] वाग् (शब्द) नित्य है, प्रजापति भी नित्य है । इन दोनों को उत्पत्ति की अपेक्षा नहीं है । इसीलिए इसे प्रजापति देवताक माना गया है ।[४६] वाग्रूप अनुष्टुप् और प्राजापत्यात्मक सप्तदश दोनों (नित्य देवता) मिलकर चतुरुत्तर छन्दों का निर्माण किया है ।[४७] वागात्मक अनुष्टुप् छन्द से देवों ने असुरों को अवाक् किया है ।[४८] मनुष्यों ने अनुष्टुप् छन्द को अपनाया, इसीलिए अर्थाभिव्यक्ति में समर्थ वाणी को बोल पाते हैं ।[४९] सभी देवों ने भी अनुष्टुप् छन्द का आश्रय लिया है ।[५०] अनुष्टुप् छन्द सत्यानृतात्मक भी है ।[५१] अनुष्टुप् कुहू (चान्द्रमास का अन्तिम दिन अमावास्या) है ।[५२] अनुष्टुप् छन्द आयु है और मित्र देवताक है ।[५३] यह सोम देवता का छन्द है ।[५४] अनुष्टुप् आज्य के आयतन हैं ।[५५] यह छन्द उदीची दिशा है, शरद् ऋतु है, मित्रावरुण देवताक है, पुष्ट द्रविण है, वैराज साम है, एकविंशस्तोम आदि है ।[५६] यह क्षात्रधर्म का छन्द है ।[५७] यह इक्कीस धाम वाला है ।[५८] इस छन्द का माहत्म्य इससे अधिक क्या लिखें, यह तो सब कुछ है ।[५९]

इन वचनों से विज्ञात होता है कि अनुष्टुप् छन्द का उपयोग यज्ञविज्ञान, वाग्विज्ञान, आसुरी शक्तियों का पराभव, देवत्व की रक्षा, शब्दार्थविज्ञान, सत्यासत्य का प्रतिपादन, चन्द्रमास का विज्ञान, आयु की सिद्धि, उदीची दिशा सम्बन्धी विज्ञान, शरद् ऋतु का विज्ञान, क्षात्रधर्म, जलविज्ञान[६०], भूविज्ञान[६१], प्राणविज्ञान[६२] आदि के प्रतिपादन के लिए किया जाता है।[६३] प्रतिष्ठा कामना की सिद्धि के लिए इसी छन्द का विनियोग किया जाता है ।[६४]

४. बृहती छन्द – अथ बृहती (जै० ब्रा० १.२५४) अब बृहतीछन्द का वर्णन करते हैं । इस छन्द में ३६ अक्षर होते हैं ।[६५] यह छन्द अपने दस अक्षरों से भूलोक को, अन्य दस अक्षरों से अन्तरिक्ष लोक को, अन्य दस अक्षरों से द्युलोक को, चार अक्षरों से दिशाओं को, दो अक्षरों से अहोरात्र को व्याप्त करता है, इस प्रकार अपने ३६ अक्षरों से सभी लोकों को व्याप्त करता है । इसीलिए इसका नाम बृहती है ।[६६] यह

---

४३. बृहस्पतिरष्टाक्षरयानुष्टुभमुदजयच्चतुर्धा ह्येतस्या अष्टा अष्टा अक्षराणि (मै०सं० १.११.१०) ।
४४. अनुष्टुबनुस्तोभनात् (दै० ब्रा० ३.७., अपि च द्र० निरु० ७.१२) ।
४५. अथानुष्टुप् वागेव सा... द्वयं वाचा करोति, अन्नं चैनयात्ति वदति च (जै० ब्रा० १.२५४), वागेवासौ प्रथमानुष्टुप् (कौ० ब्रा० १५.३), वागनुष्टुप् (मै०सं० ३.९.५) ।
४६. प्राजापत्यमेतच्छन्दो यदनुष्टुप् (मै०सं० ३.६.५) । अनुष्टुप् वै प्रजापतेः स्वं छन्दः (काठकसं० २३.२) ।
४७. द्रष्टव्य– सायण, तां०ब्रा० १०.२.४ । अनुष्टुब्भि छन्दसां योनिः (तां०ब्रा० ११.५.१७) ।
४८. अनुष्टुभा वै वाचा छन्दसा देवा असुरान् अवाचोऽवाघ्नन् (जै०ब्रा० १.२६१); (असुराणां) वाचम् अनुष्टुभा (देवा अवृञ्जत) (जै०ब्रा० १.९९) ।
४९. आनुष्टुभः पुरुषस्तस्मात् पुरुषः सर्वा वाचो वदति (मै०सं० ४.७.५) ।
५०. विश्वेदेवा अनुष्टुभं समभरन् (जै०उ०ब्रा० १.४.४.७); विश्वेषां देवानामनुष्टुप् (जै० ब्रा० २.१०१) ।
५१. सत्यानृते वा अनुष्टुप् (तै०ब्रा० १.७.१०.४) ।
५२. अनुष्टुप् कुहूः (तै०सं० ३.४.९.६), या कुहूः सानुष्टुप् (ऐ०ब्रा० ३.४७,४८) ।
५३. अनुष्टुप् छन्दस्तदायुर्मित्रो देवता (मै०सं० २.१३.१४) ।
५४. अनुष्टुप् सोमस्य छन्दः (कौ०ब्रा० १५.२) ।
५५. अनुष्टुबायतनानि ह्याज्यानि (ऐ०आ० १.१.२) ।
५६. उदीचि दिक् शरद्दतुर्मित्रावरुणौ देवता पुष्टं द्रविणमनुष्टुप् छन्दो वैराजं सामैकविंशस्तोमः, स उ त्रिणववर्तनिः पुराणा ऋषिस्तुर्यवाड् वयोऽभिभवोऽयानाम् (मै०सं० २.७.२०) । अनुष्टुबुदीची (दिक्) (शत० ब्रा० ८.३.१.१२), (तु० शत० ब्रा० ५.४.१.६) ।
५७. क्षत्रं वा अनुष्टुप् (तै०सं० ३.३.९.१) ।
५८. एकविंशतिधाम्नी वा अनुष्टुप् (मै०सं० ४.७.६) ।
५९. अनुष्टुबेव सर्वम् (गो०ब्रा० १.५.१५) ।
६०. आपो वा अनुष्टुप् (कौ०ब्रा० २४.४) ।
६१. इयं (पृथिवी) वानुष्टुप् (तां०ब्रा० ८.७.२, शत०ब्रा० १.३.२.१६) ।
६२. प्राणा वानुष्टुप् (तै०सं० ५.३.८.२) ।
६३. अनुष्टुभेन=अनुष्टुब्विहितार्थयुक्तेन (दया०, यजु० ११.११)। अनुष्टुभा= अनुष्टुप् मन्त्र द्वारा सिद्ध हुई विद्या से (दया०, यजु० १३.३४)।
६४. अनुष्टुभा प्रतिष्ठाकामस्य (परिदध्यात्) (तै०सं० ६.४.३.२) ।
६५. ता वा एता बृहत्यो यत् षट्त्रिंशदक्षराः (तां०ब्रा० १६.११.१०) । षट्त्रिंशदक्षरा बृहती (तै०सं० २.५.१०.३) ।
६६. बृहत्यु ह वा इमान् सर्वान् लोकानक्षरैर्व्याप्नोति । दशभिरेवाक्षरैरिमं लोकं व्याप्नोति, दशभिरन्तरिक्षं, दशभिरमुं, चतुर्भिर्दिशो, द्वाभ्यामहोरात्रे (जै०ब्रा० २.११३, तुलना– ऐ०ब्रा० ४.२४, तां० ब्रा० ७.४.३)। बृहती बृंहतेर्वृद्धिकर्मणः(दै०ब्रा० ३.११, द्र० निरु०७.१२)।

छन्द स्वर्गलोक में जाने के पश्चात्, लोकों में व्याप्त होने के पश्चात् ही इसका नाम बृहती हुआ, उससे पूर्व बृहती नाम का कोई छन्द नहीं था ।[६७] इसलिए बृहतीछन्द को ही स्वर्गलोक कहा जाता है ।[६८] इसमें प्रतिष्ठित होकर ही आदित्य तपता है ।[६९] नौ-नौ अक्षर के चार पादों से ३६ का भी बृहतीछन्द बनता है ।[७०] बृहस्पति देवता इस छन्द का पति होने से (बृहतां छन्दसां पतिः) बृहस्पतिः कहलाया है ।[७१] सूर्य को भी इस छन्द का देवता माना गया है ।[७२] इस छन्द का लोक अन्तरिक्ष है ।[७३] जिस प्रकार आत्मा शरीर के अंग, प्रत्यंगों से परिवृत है, उसी प्रकार यह बृहतीछन्द भी सभी छन्दों से परिवृत है । इसलिए यह छन्द सभी छन्दों में आत्मस्थानीय है।[७४] बृहती छन्दों पर अधिकाधिक सामगान गाये जाते हैं ।[७५] बृहतीछन्द के मन्त्रों से वषट्कार नहीं किया जाता अर्थात् याज्या के रूप में इनका विनियोग नहीं होता । जो इन छन्दों से वषट्कार करेगा, उसके पशु जलकर नष्ट होंगे । हाँ! बृहतीछन्दों से स्वराज्य की सिद्धि होती है ।[७६]

इन वचनों का निष्कर्ष यह है– यह छन्द आत्मस्थानीय प्रमुख विषयों का प्रतिपादन करता है और यह छन्द तीनों लोकों में व्याप्त तत्त्वों के निरूपण में पूर्ण समर्थ है, त्रैलोक्य विज्ञान इन छन्दों की ऋचाओं में निहित है । स्वर्गलोक की कामना की सिद्धि व प्रकार इस छन्द में प्रतिपादित है ।[७७] आदित्य व सूर्य का विज्ञान, बृहस्पति देवता के वर्ण्य विषय, अन्तरिक्षलोक विज्ञान या इन्द्र एवं वायु देवताओं का विज्ञान, सामगानविद्या, स्वराज्य की स्थापना, पशुसम्पदा,[७८] गो–अश्व–पशुओं का विज्ञान,[७९] अष्टैश्वर्यों की सिद्धि,[८०] संवत्सरविज्ञान,[८१] दिन–विषुवान् दिन आदि ज्योतिष के विषय[८२], ओज–वीर्य–पराक्रमादि विषय,[८३] युद्ध की कुषलताएँ,[८४] मनोविज्ञान,[८५] वृष्टिविज्ञान,[८६] आदि प्रमुख विषयों के प्रतिपादन के लिए बृहती छन्द अत्यन्त उपयोगी है।[८७] इस छन्द का ऋषि भरद्वाज है ।[८८]

५. पंक्तिछन्द - यह छन्द ४० अक्षर का होता है[८९] और यह पांच पादवाला होता है ।[९०] पांच-पांच अक्षर वाले चार पादों का अर्थात् २० अक्षर का भी पंक्तिछन्द होता है । जिसे अक्षरपंक्ति कहते हैं ।

---

६७. ते (देवाः)ब्रुवन् स्वर्गं लोकं गत्वा बृहती वा इयमभूद्, ययेदं व्याप्नोति । तदेव बृहत्य बृहतीत्वम् । न ततः पुरा बृहती नाम छन्द आस (जै०ब्रा० १.१२०) ।

६८. बृहती स्वर्गो लोकः (जै०ब्रा० १.२९०, शत० ब्रा० १०.५.४.६) ।

६९. बृहत्यां वा असावादित्यः श्रियां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितस्तपति (गो०ब्रा० २.५.७) ।

७०. मित्रो नवाक्षरया बृहतीमुदजयच्चतुर्धा ह्येतस्या नवनवाक्षराणि (मै०सं० १.११.१०) । यस्य नव ता बृहतीम् (अभिसम्पद्यन्ते) (कौ०ब्रा० ९.२) ।

७१. यदस्यै वाचो बृहत्यै पतिस्तस्माद् बृहस्पतिः (जै०उ०ब्रा० २.१.२.५) ।

७२. सूर्यो देवता बृहती छन्दः ।

७३. अयं मध्यमो (अन्तरिक्षलोकः) बृहती (तां०ब्रा० ७.३.९) ।

७४. एष वै कृत्स्न आत्मा यद् बृहती...यथायमात्मा सर्वतः शरीरैः (अङ्गैः) परिवृत एवमेव बृहती सर्वतश्छन्दोभिः परिवृता । मध्यं ह्येषामङ्गानामात्मा, मध्यं छन्दसां बृहती (ऐ०आ०२.३.५) ।

७५. बृहत्यां भूयिष्ठानि सामानि भवन्ति (तां०ब्रा० ७.३.१६) ।

७६. स्वाराज्यमेव बृहत्यभ्यसृज्यत, तस्मात् बृहत्या न वषट्कुर्वन्ति, यद् वषट्कुर्युः पशूनग्नौ प्रदध्युः (काठ०सं० ३४.७) । स्वराज्यं छन्दसां बृहती (तां०ब्रा० २४.६.३) । साम्राज्यं बृहत्यामेव (जै०ब्रा० २.११३) । तु० जै०ब्रा० २.९४ ।

७७. बहत्या वै देवाः स्वर्गं लोकमायन् (तां०ब्रा० १६.१२.७) ।

७८. सा वा एषा पशव एव यद् बृहती (जै०ब्रा० १.१२०) ।

७९. गोऽश्वमेव हि बृहती (कौ०ब्रा० ११.२) ।

८०. श्रीर्वै बृहती (कौ० ब्रा० २८.७) । श्रीर्वै बृहज्ज्यैष्ठ्यम् (जै०ब्रा० २.९७) ।

८१. बृहती हि संवत्सरः (शत०ब्रा० ६.४.२.१०) ।

८२. काठ० सं० ६.८, तै०सं० ७.२.८.३, जै०ब्रा० २.३६, तां०ब्रा० ९.७.७ आदि ।

८३. ओजो वै वीर्यं बृहत् (काठ०सं० ३७.८) ।

८४. वर्ष्म वै बृहत् (जै०ब्रा० ३.२६१, तां०ब्रा० ११.९.४) ।

८५. मनो बृहती (शत०ब्रा० १०.३.१.१)।

८६. जै०ब्रा० १.१४३ ।

८७. बृहत्यै =बृहतीछन्दोऽर्थाय (दया०, यजु० २४.१३)।

८८. भरद्वाजस्य वा एतदार्षेयं यद् बृहत् (जै०ब्रा० ३.२०,२२)।

८९. चत्वारिंशदक्षरा पंक्तिः (कौ०ब्रा० १७.३, जै०ब्रा० १.३४)।

९०. पञ्चपदा पंक्तिः (ऐ०ब्रा० ५.१८)।

अक्षरपंक्ति का देवता सविता है ।[९१] पंक्तिछन्द की ऊर्ध्वा दिक् है[९२], हेमन्त और शिशिर ऋतु हैं, बृहस्पति देवता है, फल द्रविण है, शाक्वर एवं रैवत सामगान हैं, त्रिणव स्तोम है, त्रयस्त्रिंशवर्तनि है, सुपर्ण ऋषि है।[९३] जो पांच पाद वाली, सप्तदश अक्षर वाली पंक्ति है वह सब यज्ञों से यजमान को स्वर्ग लोक में ले जाने वाली होती है ।[९४] पंक्तिछन्द पुरुषविषयक एवं परमेष्ठी देवताक है ।[९५] इसका देवता मरुत् भी है ।[९६] प्रजापति देवता पंक्तिछन्दस्क है ।[९७]

पंक्तिछन्द के द्वारा निरूपणीय विषय इस प्रकार हैं– यज्ञ[९८], यजमान[९९], स्वर्ग, ऊर्ध्व दिशा का विज्ञान, हेमन्त और शिशिर ऋतु, श्रोत्रविज्ञान[१००], अन्नविज्ञान[१०१], पशुविज्ञान[१०२], पुरुषविज्ञान[१०३], ब्रह्मविज्ञान[१०४], प्रतिष्ठा की प्राप्ति[१०५] आदि।[१०६] इस छन्द का अङ्गिरा[१०७], बृहस्पति[१०८], अग्नि, प्रजापति, यज्ञ, सविता, मरुत्, परमेष्ठी, विष्णु[१०९] आदि देवताओं के साथ सम्बन्ध है ।

६. त्रिष्टुप् छन्द – अथ त्रिष्टुप् (जै०ब्रा० १.२५४) अब हम त्रिष्टुप् छन्द का प्रतिपादन करते हैं । इस छन्द में ४४ अक्षर होते हैं ।[११०] यह अक्षरपरिमिति 'ब्रह्मवर्चस'का द्योतक है ।[१११] इसके चार पाद होते हैं[११२] और प्रत्येक पाद में ११-११ अक्षर होते हैं ।[११३] यह एकादश संख्या ११ रुद्रों[११४] का प्रतीक है और वज्र[११५], प्राण[११६], प्रजापति[११७] का भी द्योतक है । वैसे इस छन्द का देवता रुद्र[११८], प्रजापति[११९], इन्द्र[१२०] हैं।

---

९१. सविता पञ्चाक्षरयाक्षरपंङ्क्तिमुदजयद्, या ह्यक्षरपंक्तिः सा पंक्तिः, चतुर्धा ह्येतस्याः पञ्चपञ्चाक्षराणि (मै०सं० १.११.१०)।
९२. पंक्तिरूर्ध्वा (दिक्) (शत०ब्रा० ८.३.१.१२)।
९३. मै०सं० २.७.२०।
९४. अथ यः पङ्क्तिः पञ्चपदां सप्तदशाक्षरां सर्वैर्यज्ञैर्यजमानं स्वर्गं लोकमभिवहन्तीं विद्यात् (गो०ब्रा० १.३.८)।
९५. पंक्तिश्छन्दस्तत्पुरुषः परमेष्ठी देवता (मै०सं० २.१३.१४) ।
९६. पंक्तिश्छन्दो मरुतो देवताष्ठीवन्तौ (शत०ब्रा० १०.३.२.१०) ।
९७. पाङ्क्तः प्रजापतिः (काठ०सं० १२.५) ।
९८. पाङ्क्तो यज्ञः (तै०सं० ५.२.३.६) ।
९९. यजमानो वै पंक्तिः (मै०सं० ३.३.९) ।
१००. श्रोत्रं पंक्तिः (शत०ब्रा० १०.३.१.१) ।
१०१. पंक्तिर्वा अन्नम् (ऐ०ब्रा० ६.२०), पांङ्क्तमन्नम् (जै०ब्रा० २.२१३) ।
१०२. पाङ्क्ताः पशवः (तै०सं० ३.१.५.१) ।
१०३. पाङ्क्तोऽयं पुरुषः पंचधा विहितो लोमानि त्वङ् मांसमस्थि मज्ञा (ऐ०ब्रा० २.१४, ६.२९) ।
१०४. ब्रह्म पाङ्क्तम् (शां०आ० ११.७) ।
१०५. प्रतिष्ठा वै पंक्तिः (कौ०ब्रा० ११.३) ।
१०६. पङ्क्त्यै = पङ्क्तिछन्दोऽर्थाय (दया०, यजु० २४.१३)।
१०७. अङ्गिरोभिर्देवेभिर्देवतया पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा युनज्मि हेमन्तशिशिराभ्याम् (तै०सं० ७.१.१८.२) ।
१०८. ऊर्ध्वया त्वा दिशा सादयामि पाङ्क्तेन छन्दसा बृहस्पतिना देवतयाऽग्नेः (तै०सं० ५.५.८.३) ।
१०९. मै०सं० १.९.२, काठ०सं० ९.१०, गो०ब्रा० २.२.९ ।
११०. चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप् (तै०सं० २.५.१०.४) ।
१११. ब्रह्मवर्चसं वै चतुश्चत्वारिंशः (तै०सं० ५.३.५.१) ।
११२. चतुष्पदा त्रिष्टुप् (तै०सं० ३.२.९.१) ।
११३. चतर्धाः ह्येतस्याः (त्रिष्टुभः) एकादशैकादशाक्षराणि (मै०सं० १.११.१०) द्र० ऐ०ब्रा० ३.१२ ।
११४. एकादश रुद्रा एकादशाक्षरा त्रिष्टुप् (तै०सं० ३.४.९.७) ।
११५. वज्र एकादशिनी (तै०सं० ५.५.७.१) ।
११६. प्राणा वा एकादशिनीः (काठ०सं० ३४.१) । ११७. प्रजापतिर्ह्येकादशिनी (शत०ब्रा० १३.६.१.६) ।
११८. मै०सं० १.९.२, जै०ब्रा० १.३५, काठ० सं० ७.६, जै०उ०ब्रा० १.४.४.५ ।
११९. जै०ब्रा० १.६८, २.१०१
१२०. जै०ब्रा० २.१०१ । यदैन्द्रं तत् त्रिष्टुभो रूपम् (जै०ब्रा० ३.२०६), शत०ब्रा० ६.६.२.७ ।

यह क्षात्रधर्म का छन्द है ।[१२१] इस छन्द का ऋषि भरद्वाज है ।[१२२]

इस छन्द के द्वारा प्रतिपाद्य विषय इसप्रकार हैं– दक्षिणादिक्[१२३], ग्रीष्मऋतु[१२४], द्युलोकविज्ञान[१२५], अन्तरिक्षलोक[१२६], वायुविद्या[१२७], प्राणविद्या, आत्मविद्या, इन्द्रियविज्ञान, बल, वीर्य, पराक्रम आदि[१२८], क्षात्रधर्म[१२९], शास्त्रविद्या[१३०], भूविज्ञान (शत०ब्रा० २.२.१.२०), पूर्णमासी[१३१] आदि ।[१३२]

७. जगती छन्द – अथ जगती (जै०ब्रा० १.२५४) अब जगती छन्द का निरूपण किया जाता है । इसमें ४८ अक्षर होते हैं ।[१३३] इसमें बारह–बारह अक्षर के चार पाद होते हैं ।[१३४] यह द्वादशसंख्या बारह मास व आदित्य का द्योतक है ।[१३५] उक्त सप्त छन्दों में अधिकतम अक्षरवाला होने से इसका नाम जगती है ।[१३६] इस छन्द का ऋषि जमदग्नि है[१३७] और देवता विश्वेदेव[१३८], मरुत्[१३९], आदित्य[१४०], प्रजापति, इन्द्र (जै०ब्रा० २.१०१) हैं । यह द्युलोक एवं भूलोक सम्बन्धी छन्द है ।[१४१] यह सभी छन्दों में परिपुष्ट छन्द है ।[१४२] इसीलिए इसमें उक्त सभी छन्द समाहित हो जाते हैं ।[१४३] जगती छन्द से श्रोत्र और दिशा का सन्धान करना चाहिए।[१४४] इसी छन्द से होता का वरण होता है[१४५] तथा उपभृत में आठ वार आज्य का ग्रहण किया जाता है ।[१४६]

विश्वेदेव, मरुत्, आदित्य, प्रजापति, इन्द्र देवताओं का प्रतिपाद्य का प्रतिपादन करना, जमदग्नि ऋषि की दृष्टि को प्रस्तुत करना, द्युलोक एवं भूलोकों का विज्ञान, श्रोत्रविज्ञान, श्रवणविज्ञान, प्रतीची (पश्चिम) दिशा का विज्ञान[१४७], सिनीवाली (अमावास्या) का विज्ञान[१४८], यशःकामना की सिद्धि[१४९], पशुसम्पदा की प्राप्ति[१५०], वैश्य वर्ण के कर्तव्यों का प्रतिपादन[१५१], स्त्रीपुरुषविज्ञान व प्रजननविज्ञान[१५२], वृष्टिविज्ञान

---

१२१. क्षत्रस्यैवैतच्छन्दो यत्त्रिष्टुप् (कौ०ब्रा० १०.५), ब्रह्म गायत्री, क्षत्रं त्रिष्टुप् (शत०ब्रा० १.३.५.५) ।
१२२. मै०सं० २.७.१९, काठ०सं० १६.१९ ।
१२३. त्रिष्टुब्दक्षिणा (दिक्) (शत०ब्रा० ८.३.१.१२) ।
१२४. शत०ब्रा० ५.४.१.४ ।
१२५. असावुत्तमः (द्युलोकः) त्रिष्टुप् (तां०ब्रा० ७.३.९) ।
१२६. त्रैष्टुभोऽन्तरिक्षलोकः (कौ०ब्रा० ८.९) ।
१२७. त्रैष्टुभो हि वायुः (शत०ब्रा० ८.७.३.१२) । यजुषां वायुर्देवतं तदेव ज्योतिस्त्रैष्टुभं छन्दोऽन्तरिक्षस्थानम् (गो०ब्रा० १.१.२९)।
१२८. जै०ब्रा० १.१३२, कौ०ब्रा० ७.२, शत०ब्रा० ७.४.२.२७ ।
१२९. त्रिष्टुप् छन्दा वै राजन्यः (तै०सं० १.१.९६) । द्र० जै०ब्रा० १.६८ ।
१३०. ऐ०ब्रा० २.२, मै०सं० ३.२.१० ।
१३१. या राका सा त्रिष्टुप् (ऐ०ब्रा० ३.४.७), त्रिष्टुप् राका (तै०सं० ३.४.९.६) ।
१३२. त्रिष्टुप्=एतच्छन्दोऽभिहितं विज्ञानम् (दया०, यजु० १०.११) ।
१३३. अष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती (तै०सं० २.५.१०.४) ।
१३४. चतुर्धा ह्येतस्या (जगत्याः) द्वादश द्वादशाक्षराणि (मै०सं० १.११.१०) ।
१३५. द्वादशादित्या द्वादशाक्षरा जगती (तै०सं० ३.४.९.७) ।
१३६. जगती गततमं छन्दः (दै०ब्रा० ३.१७) ।
१३७. काठ०सं० १६.१९ ।
१३८. मै०सं० २.६.१०, तै०सं० १.७.११.२ ।
१३९. काठ०सं० १४.७, तै०सं० १.८.१३.१ ।
१४०. जै०उ०ब्रा० १.४.४.६ ।
१४१. असौ (द्यौः) जगती (जै०ब्रा० १.३३९), इयं (पृथिवी) वै जगती (शत०ब्रा० १२.८.२.२०) ।
१४२. जगती वै छन्दसां परमं पोषं पुष्टा (तां०ब्रा० २१.१०.९) ।
१४३. जगती सर्वाणि छन्दांसि (शत०ब्रा० ६.२.१.३०) ।
१४४. जगत्यां प्रस्तुतायां श्रोत्रेण दिशः संदध्यात् (जै०ब्रा० १.२७०) ।
१४५. यद्धोतारं वृणीते जगती तद् वृणीते (मै०सं० ३.९.८, द्र० काठ०सं० २६.९) .
१४६. यदष्टौ कृत्वा उपभृति गृह्णाति त्रिष्टुब्जगतीभ्यां तद् गृह्णाति (श०ब्रा० १.३.२.१६) ।
१४७. जगती प्रतीची (दिक्) (शत०ब्रा० ८.३.१.१२) ।
१४८. तै०सं० ३.४.९.६, मै०सं० ४.३.५, ऐ०ब्रा० ३.४७, कठ०सं० १२.८ ।
१४९. जगत्येव यशः (गो०ब्रा० १.५.१५) ।
१५०. पशवो जगती (मै०सं० ४.१.९), जागताः पशवः (तै०सं० २.५.१०.२) । जगत्येवास्मै (वैश्याय) पशून गृह्णाति (तै०सं० २.५.१०.२) ।
१५१. जगती छन्दा वै वैश्यः (तै०सं० १.१.९.७), वैश्यो जगतीछन्दः (जै०ब्रा० १.६९) ।
१५२. पुंसो वा एतद् रूपं यद् बृहती स्त्रियै जगती (जै०ब्रा० ३.२६१), प्रजननं जगती (जै०ब्रा० १.९३, ष०ब्रा० २.३) ।

(वर्षाऋतु का विज्ञान)[१५३], बल-वीर्य आदि का प्रतिपादन[१५४] इत्यादि विषयों के प्रतिपादन के लिए जगती छन्द उपयोगी है।[१५५] ऋक्प्रातिशाख्यकार आचार्य शौनक ने भी कहा है कि –

सर्वाणि भूतानि मनो गतिश्च, स्पर्शाश्च गन्धाश्च रसाश्च सर्वे।
शब्दाश्च रूपाणि च सर्वमेतत्, त्रिष्टुब्जगत्यौ समुपैति भक्त्या॥ (ऋ. प्रा. १८.५९)

सब भूत, मन, गति, स्पर्श, गन्ध, सब रस, शब्द, रूप - ये सब भक्ति अर्थात् यथोचित अनुपात विशेष से या प्रसंगवश त्रिष्टुप् और जगती छन्दों को प्राप्त होते हैं। अर्थात् ऋग्वेद में इन दो छन्दों से उक्त विषय प्रसंगतः वर्णित होते हैं।

अभी तक गायत्री आदि सात छन्दों का स्वरूप और वेदार्थ में उनकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है । वे 'पादाक्षरगणनानुसारी' छन्द हैं । परन्तु 'केवल अक्षरगणनानुसारी' छन्द भी होते हैं, जिनका स्वरूप और वेदार्थ में उनकी उपयोगिता विषय पर आगे विचारते हैं ।

पादव्यवस्था की अपेक्षा न करते हुए केवल अक्षरों की गणना के आधार पर निर्धारित छन्द ही 'केवल अक्षरगणनानुसारी' कहलाते हैं । वे इसप्रकार हैं - १. दैवी, २. आसुरी, ३. प्राजापत्य और ४. आर्षी (प्रथम चतुष्क), ५. याजुषी, ६. साम्नी, ७. आर्ची और ८. ब्राह्मी (द्वितीय चतुष्क) । इनका सम्बन्ध गायत्री आदि सात छन्दों और अतिजगती आदि सात छन्दों के साथ होता है ।[१५६] जिससे दैवी गायत्री, दैवी उष्णिक् आदि छन्दोनाम प्राप्त होते हैं । दैवी गायत्री एक अक्षर का होता है और एक-एक अक्षर की वृद्धि से दैवी उष्णिक् आदि छन्द निर्मित होते हैं । आसुरी गायत्री १५ अक्षर का होता है और एक-एक अक्षर न्यून (कम) होता हुआ आसुरी उष्णिक् आदि छन्द बनते हैं । प्राजापत्य गायत्री ८ अक्षर का होता है । इसके पश्चात् चार-चार अक्षरों की वृद्धि से प्राजापत्य उष्णिक् आदि छन्द ज्ञात होते हैं । प्रथम चतुष्क छन्दों में से आद्य तीन प्रकारों के छन्दों के योग से आर्षी गायत्री आदि छन्दों का परिज्ञान हो जाता है । इनका स्वरूप एवं अग्रिम द्वितीय चतुष्क छन्दों का भी स्वरूप तथा इनके वृद्धि-ह्रास के नियमों का बोध अनुपद प्रस्तुत प्रस्तार से पूर्णतया स्पष्ट हो जायेगा –

क्रमसंख्या	छन्दों के नाम	गायत्री	उष्णिक्	अनुष्टुप्	बृहती	पंक्ति	त्रिष्टुप्	जगती	अतिजगती	शक्वरी	अतिशक्वरी	अष्टि	अत्यष्टि	धृति	अतिधृति	अक्षरों की वृद्धि व ह्रास
१	दैवी	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	+ १
२	आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	८	७	६	५	४	३	२	– १
३	प्राजापत्य	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८	५२	५६	६०	+ ४
४	आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८	५२	५६	६०	६४	६८	७२	७६	+ ४
५	याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२								+ १
६	साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४								+ २
७	आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६								+ ३
८	ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२								+ ६

द्वितीय चतुष्क में याजुषी गायत्री आदि में १-१ अक्षर की वृद्धि हुई, साम्नी गायत्री आदि में २-२ अक्षरों की वृद्धि, आर्ची गायत्री आदि में ३-३ अक्षरों की वृद्धि और ब्राह्मी गायत्री आदि में ६-६ अक्षरों की

१५३. शत०ब्रा० ५.४.१.५ ।
१५४. कौ०ब्रा० ११.२, गो०ब्रा० २.५.५ ।
१५५. जगती =एतच्छन्दोऽभिहितम् अर्थम् (दया०, यजु० १०.१२)। जगतीम् =एतच्छन्दोऽभिहितां नीतिम् (दया०, यजु० ९.३३)।
१५६. इस सम्बन्ध के विषय में अनेक मत भेद हैं, जिनके लिए वैदिक छन्दोमीमांसा (युधिष्ठिर मीमांसक) का अष्टम अध्याय द्रष्टव्य है ।

वृद्धि हुई है। याजुषी आदि तीन छन्दों का योग ही ब्राह्मी छन्दों का परिमाण है । इन छन्दों का वर्णन प्रतिपाद्य विषय के साथ अग्रिम याजुषमन्त्रों में हुआ –

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत् तमुज्जेषमश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपादो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषं विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रीँल्लोकानुदजयत्तानुज्जेषऽ सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम् ॥३१॥ पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिशऽउदजयत्ताऽउज्जेष सविता षडक्षरेण षडृतूनुदजयत्तानुज्जेषं मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदजयँस्तानुज्जेषं बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत्तामुज्जेषम् ॥३२॥ मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतँ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषमिन्द्रऽएकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेषं विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयँस्तामुज्जेषम् ॥३३॥ वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशँ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेष रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशँ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषमादित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशँ स्तोममुदजयँस्तामुज्जेषमदितिः षोडशाक्षरेण षोडशँ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषं प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदश स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् ॥३४॥

(माध्यन्दिनवाजसनेय यजुर्वेद – ९.३१ से ३४; काण्वसंहिता – १०.४०-४३; तैत्तिरीय संहिता– १.७.११)।

इन मन्त्रों की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण (५.२.२.१७) में की गई है । इन मन्त्रों में स्पष्टतया कहा गया है कि – अग्नि, अश्विनौ आदि देवताओं ने एकाक्षर, द्व्यक्षर आदि छन्दों से प्राण, द्विपद मनुष्य आदियों को उत्कृष्टतया (पूर्णतया, अच्छी तरह) जीत लिया है, उन पर अधिकार प्राप्त किया है अर्थात् प्राणादि तत्त्वों को सम्यक्तया, पूर्णतया जान लिया है । इन चार मन्त्रों के भाव को निम्न प्रस्तार से सरलतया जान सकते हैं –

यजुः मन्त्र संख्या	अक्षर संख्या	देवता (कर्तृपदम्)	छन्द (साधनपदम्)	प्राप्तव्य ज्ञान (कर्मपदम्)	प्रयत्न (क्रियापदम्)
	१.	अग्निः	एकाक्षरेण (छन्दसा)	प्राणम्	उदजयत्
३१	२.	अश्विनौ	द्व्यक्षरेण	द्विपदः मनुष्यान्	उदजयताम्
	३.	विष्णुः	त्र्यक्षरेण	त्रीन् लोकान्	उदजयत्
	४.	सोमः	चतुरक्षरेण	चतुष्पदः पशून्	,,
	५.	पूषा	पञ्चाक्षरेण	पञ्चदिशः / पंक्तिम्$	,,
	६.	सविता/धाता$	षडक्षरेण	षड् ऋतून्	,,
३२	७.	मरुतः	सप्ताक्षरेण	सप्तग्राम्यान् पशून् / सप्तपदां शक्करिम्$	उदजयन्
	८.	बृहस्पतिः	अष्टाक्षरेण	गायत्रीम्	उदजयत्
	९.	मित्रः	नवाक्षरेण	त्रिवृतं स्तोमम्	,,
३३	१०.	वरुणः	दशाक्षरेण	विराजम्	,,
	११.	इन्द्रः	एकादशाक्षरेण	त्रिष्टुभम्	,,
	१२.	विश्वे देवाः	द्वादशाक्षरेण	जगतीम्	उदजयन्
	१३.	वसवः	त्रयोदशाक्षरेण	त्रयोदशं स्तोमम्	,,
	१४.	रुद्राः	चतुर्दशाक्षरेण	चतुर्दशं स्तोमम्	,,
३४	१५.	आदित्याः	पञ्चदशाक्षरेण	पञ्चदशं स्तोमम्	,,
	१६.	अदितिः	षोडशाक्षरेण	षोडशं स्तोमम्	उदजयत्
	१७.	प्रजापतिः	सप्तदशाक्षरेण	सप्तदशं स्तोमम्	,,

यहाँ यह ध्यातव्य है कि महर्षि दयानन्द जी ने इन मन्त्रों के व्याख्यान में 'केवल अक्षरगणनानुसारी

$. यह तैत्तिरीयसंहिता का पाठ है ।

छन्दों' का ही ग्रहण किया है । अन्य भाष्यकारों ने छन्दोनामों का ग्रहण नहीं किया, केवल सामान्यरूप से मन्त्रानुसार एकाक्षर छन्द आदि के रूप में ही दिखाये हैं । अब हम एकाक्षर, द्व्यक्षर आदि के छन्द कौन-कौन से हैं, उन्हें नीचे सरणी में दिखाते हैं –

अक्षर-संख्या	छन्दों के नाम				
१.	दैवी गायत्री*				
२.	दैवी उष्णिक्*	आसुरी अतिधृति			
३.	दैवी अनुष्टुप्*	आसुरी धृति			
४.	दैवी बृहती*	आसुरी अत्यष्टि			
५.	दैवी पंक्ति*	आसुरी अष्टि			
६.	दैवी त्रिष्टुप्*	आसुरी अतिशक्करी		याजुषी गायत्री	
७.	दैवी जगती*	आसुरी शक्करी		याजुषी उष्णिक्	
८.	दैवी अतिजगती	आसुरी अतिजगती	प्राजापत्य गायत्री	याजुषी अनुष्टुप्*	
९.	दैवी शक्करी	आसुरी जगती		याजुषी बृहती*	
१०.	दैवी अतिशक्करी	आसुरी त्रिष्टुप्		याजुषी पंक्ति*	
११.	दैवी अष्टि	आसुरी पंक्ति*		याजुषी त्रिष्टुप्	
१२.	दैवी अत्यष्टि	आसुरी बृहती	प्राजापत्य उष्णिक्	याजुषी जगती	साम्नी गायत्री*
१३.	दैवी धृति	आसुरी अनुष्टुप्*			
१४.	दैवी अतिधृति	आसुरी उष्णिक्			साम्नी उष्णिक्*
१५.		आसुरी गायत्री*			
१६.			प्राजापत्य अनुष्टुप्		साम्नी अनुष्टुप्*
१७.				निचृदार्ची@ गायत्री*	
१८.#				आर्ची गायत्री	साम्नी बृहती

यजुर्वेद (९.३१-३४) के वर्णनानुसार यह स्पष्ट ज्ञापित होता है कि छन्दाक्षरों की संख्या का उस-उस छन्द के द्वारा ज्ञातव्य (प्रतिपाद्य) विषय के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है । जैसे कि द्व्यक्षर छन्द से द्विपद मनुष्य, त्र्यक्षर से तीन लोक, चतुरक्षर से चतुष्पाद पशु इत्यादि । इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक छन्द का अक्षरपरिमाण तत्परिमाण (उस संख्या) वाले किसी विषय का सूचक होता है । उसी का आगे संकेत करने का प्रयास करते हैं । प्रसंगतः भिन्न-भिन्न अर्थों का ऊह होसकता है । यहाँ तो केवल दिग्दर्शनमात्र किया जा रहा है ।

मन्त्रों में यह कहा गया है कि अग्नि देवता ने एकाक्षर (दैवी गायत्री) छन्द से प्राण को जीता है अर्थात् पूर्णतया उसके स्वरूप और कार्यादि को जाना है । यहाँ प्राण से अन्तरिक्षलोकस्थ वायु को[१५७] लेते हैं तो अग्नि उसी लोक का देवता विद्युत् का ग्रहण हो सकता है । यद्यपि कार्यभेद से प्राण अनेक हैं, पुनरपि यहाँ एकत्वविशिष्ट अर्थात् सामान्य (अभिन्न) प्राण का ग्रहण करना चाहिए । क्योंकि एकाक्षर छन्द के एकत्व से प्राण

---

* से चिह्नित नामों को स्वामी दयानन्द जी ने अपने भाष्य में ग्रहण किया है ।

@. केवल अक्षरगणनानुसारी छन्दों में १७ अक्षरों का कोई छन्द न होने से १८ अक्षरों के छन्द से एक अक्षर कम होने से निचृद् विशेषण के साथ उसे 'निचृदार्ची गायत्री' के रूप में स्वामी जी ने निर्देश किया है ।

#. अठारह अक्षरों से अधिक अक्षर वाले छन्दों की अपेक्षा प्रकृत याजुष मन्त्रों में न होने से इस सरणी में उन्हें नहीं दिखाया गया है।

१५७. अन्तरिक्षदेवत्यो हि प्राणः (तै० सं० ६.४.५.५) ।

विशिष्ट है। प्राण उसको कहते हैं जो किसी पदार्थ या प्राणी के अस्तित्व का मूलभूत आधार है । मनुष्यादि सभी प्राणियों का जीवन प्राण पर ही निर्भर है[१५८], इसीलिए वायु प्राणियों के लिए प्राण है । वैसे ही राष्ट्र का प्राण प्रजा (गौणीवृत्ति से), शिशु का प्राण माता, शिष्य का प्राण गुरु, विद्वान् का प्राण विद्या, व्यापारी का प्राण धन। इसप्रकार प्राण के प्रसंगतः अनेक अर्थ हो सकते हैं । उसी के अनुकूल 'अग्नि' शब्द के अर्थ को जान लेना चाहिए । उसी प्रकार अश्विनदेवताओं ने दो अक्षर वाले (दैवी उष्णिक्, आसुरी अतिधृति) छन्द से दो पैरवाले मनुष्यों को अधिकृत किया है । विष्णु ने तीन अक्षरवाले (दैवी अनुष्टुप्, आसुरी धृति) छन्द से तीन (पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यु) लोकों को जीता है ।[१५९] सोम ने चार अक्षर वाले (दैवी बृहती, आसुरी अत्यष्टि) छन्द से चार पैरवाले पशुओं को जाना, उत्तम बनाया है । पूषा ने पांच अक्षरवाले (दैवी पंक्ति, आसुरी अष्टि) छन्द से पाँच दिशाओं के विज्ञान को जाना है या उन्हें उत्कृष्ट बनाया है । सविता ने छह अक्षरवाले (दैवी त्रिष्टुप्, आसुरी अतिशक्वरी, याजुषी गायत्री) छन्द से छह ऋतुओं को भलीभांति जाना है या उन्हें उत्तमोत्तम बनाया है । मरुतों ने सात अक्षरवाले (दैवी जगती, आसुरी शक्वरी, याजुषी उष्णिक्) छन्द से सात ग्राम्य पशुओं को हृष्टपुष्ट बनाया है । पशुओं को इसप्रकार हृष्टपुष्ट करनेवाले मरुत् कहलाते हैं, ऐसा भी भाव ग्रहण कर सकते हैं । बृहस्पति ने आठ अक्षरवाले (दैवी अतिजगती, आसुरी अतिजगती, प्राजापत्य गायत्री, याजुषी अनुष्टुप्) छन्द से आठ अक्षर के पाद वाले गायत्री छन्द या उस छन्द के प्रतिपाद्य विषयों[१६०] को अपने अधिकार में किया है। मित्र ने नौ अक्षरवाले (दैवी शक्वरी, आसुरी जगती, याजुषी बृहती) छन्द से त्रिवृत् स्तोम की प्रक्रिया को वा उसके महत्व को जाना है । स्तोम (स्तोत्र) सामगान का एक प्रक्रियाविशेष है । सामगान की आधारभूत ऋचाएँ तीन होती हैं । उनको क्रमभेद से तीन पर्यायों में गान करते हैं, जिसे त्रिवृत्स्तोम कहते हैं । जिसमें नौ ऋचाएँ मानी जाती हैं ।[१६१] इसीप्रकार आगे के निर्दिष्ट विषयों को जानें ।

'वैदिक सम्पत्ति' के लेखक पं. रघुनन्दन शर्मा जी **''०प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशं स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम्''** (यजु० ९.३४) मन्त्रांश से भिन्न प्रकार का निष्कर्ष निकालते हैं । जो कि शिक्षाशास्त्र से सम्बन्ध रखता है, न कि छन्दःशास्त्र से । पाठकों के लाभार्थ व विचारार्थ अविकलरूप से उसे उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत कर रहें हैं –

'' वैदिक वर्णमाला में मुख्यतः १७ अक्षर हैं । इन १७ में जितने अक्षर केवल प्रयत्न अर्थात् मुख और जिह्वा के इधर उधर हिलाने, सिकोड़ने और फैलाने से बोले जाते हैं और किसी विशेष स्थान से सम्बन्ध नहीं रखते, उन्हें 'स्वर' कहते हैं और जिनके उच्चारण में स्थान और प्रयत्न दोनों की सहायता लेनी पड़ती है, उन्हें 'व्यञ्जन' कहते हैं । अ, इ, उ, ऋ और लृ स्वर हैं, क, ग, च, ज, ट, ड, त, द, प, ब व्यञ्जन हैं और अनुस्वार तथा विसर्ग मध्यस्थ हैं । यही १७ अक्षर परस्पर के मिश्रण और संयोग से ६४ प्रकार के हो गये हैं । अ, अ, से आ और आ, अ से आ३ प्लुत बना है । इसी तरह इ, उ, ऋ और लृ का भी विस्तार है ।[१६२] ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत भेद से इनके तीन तीन रूप हो जाते हैं । इसलिए अ से लृ तक इनकी संख्या १५ है और ए, ए३, ऐ, ऐ३, ओ, ओ३, औ, औ३ और अं, अः मिलकर सब स्वरों की संख्या २५ होती है । इनमें अ, इ, उ, ऋ और लृ स्वतन्त्र हैं । परन्तु ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः मिश्रित हैं । अ और इ के मिश्रण से ए, आ और इ के मिश्रण

---

१५८. प्राणं देवा अनुप्राणन्ति मनुष्याः पशवश्च ये । प्राणो हि भूतानामायुः, तस्मात् सर्वायुषमुच्यते (तै० आ० ८.३.१) । प्राणो ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च (शत० ब्रा० १४.९.२.१) । प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि युज्यन्ते (शत० १४.८.१४.२) । प्राणो हि सर्वेभ्यो भूतेभ्यो हितः (शत० ६.१.२.१४) ।

१५९. यहाँ तीन अक्षरों से तीन लोकों को जीतने का वर्णन है, पौराणिक कथा में वामन (विष्णु) द्वारा तीन पग (पाद, पद) से तीन लोकों को जीतने का वर्णन है ।

१६०. पूर्व में प्रतिपादित गायत्री के प्रतिपाद्य विषयों को देखें ।

१६१. इन स्तोमों के परिचय के लिए रामलाल कपूर ट्रस्ट से प्रकाशित ''श्रौतयज्ञों का संक्षिप्त परिचय'' पुस्तक (पृष्ठ १२५-१२७, १५८-१६२) को देखें ।

१६२. 'लृ' का जब ह्रस्व और प्लुत है, तब दीर्घ भी होना चाहिये । परन्तु संस्कृत साहित्य में वह कहीं भी नहीं पाया जाता, इसलिये उसकी गणना वर्णमाला में नहीं की जाती (रघुनन्दन शर्मा) ।

से ऐ, अ और उ के मिश्रण से ओ तथा आ और ऊ के मिश्रण से औ बना है । इसी तरह अ और ं से अं तथा अ और ः से अः बना है । ञ, ण, न, ङ, म, ꣳ और ँ आदि समस्त सानुनासिक वर्ण अनुस्वार से और ह, स, श, ष आदि वर्ण विसर्गों से ही बने हैं । विसर्गों में 'अ' जोड़ने से 'ह' बन जाता है, ह अर्थात् विसर्गों का ही 'स' हो जाता है[१६३] और यही 'स' टवर्ग के साथ होने से 'ष' तथा चवर्ग के साथ होने से 'श' हो जाता है । क, ग, च, ज, ट, ड, त, द, प और ब में 'ह' जोड़ने से क्रम से ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ और भ हो जाते हैं । इ-अ मिलकर 'य', ऋ-अ मिलकर 'र', लृ - अ मिलकर 'ल' और उ-अ मिलकर 'व' बना है । इसी तरह क-ष से 'क्ष', त-र से 'त्र' और ज-ञ से 'ज्ञ' भी बना है । इस प्रकार से २५ स्वर के, २५ वर्ग के और (य, व, र, ल, श, ष, स, ह, क्ष, त्र, ज्ञ, ꣳ और ळ आदि) १३ स्फुट के मिलाकर ६३ अक्षर होते हैं । इन्हीं में एक अर्धचन्द्र शामिल करने से ६४ हो जाते हैं । इसीलिए पाणिनीय शिक्षा में लिखा है कि **त्रिषष्टिः चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः ।** अर्थात् शम्भु परमात्मा के वैदिक मत के वर्ण ६३ या ६४ हैं '' (वैदिकसम्पत्ति, अक्षरार्थ और लिपि – पृ० २५४) ।

अस्तु प्रकृतमनुसरामः । यजुर्मन्त्रों (९.३१-३४) से यह स्पष्ट हो गया है कि छन्दोगत अक्षरसंख्याएँ उसके समान संख्या वाले किसी विषय के सूचक होती हैं ।[१६४] इसी विषय का प्रतिपादक छान्दोग्योपनिषद् से सम्बद्ध एक रोचक प्रसंग वेदान्तदर्शन (१.१.२४-२७) में आता है । जो कि इस प्रकार है – **''अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेष्विदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुषे ज्योतिस्तस्यैषा दृष्टिः''** (छा०उप० ३.१३.७) । इस द्युलोक से परे परमज्योति विश्व के ऊपर सर्वोत्तम लोक अर्थात् जिससे उत्तम व ऊपर अन्य कोई लोक नहीं है, उसमें प्रदीप्त हो रही है । वही ज्योति निश्चय से पुरुष के भीतर प्रदीप्त हो रही है । इस वचन में सन्देह उत्पन्न होता है कि यहाँ ज्योतिः शब्द से आदित्यादि की भौतिक ज्योति का ग्रहण है अथवा परमात्मा का ग्रहण है ? लोक और वेद में प्रसिद्ध होने से आदित्यज्योति का ही ग्रहण करना चाहिए, ऐसा पूर्वपक्षी का कथन है । क्योंकि इस वचन में या इससे पूर्व के वचन या प्रकरण में परमात्मा का ग्रहण करने के लिए न तद्वाचक कोई ब्रह्मादि शब्द हैं और न ही उसके कोई लिङ्ग (असाधारण गुण, क्रियादि) का वर्णन है । जिससे परमात्मा का ग्रहण कर सकें । इस पर सिद्धान्ती कहता है कि यहाँ ज्योतिः शब्द से ब्रह्म (परमात्मा) का ही ग्रहण है, क्योंकि इससे पूर्व के खण्ड (छां० ३.१२) में और पश्चात् के खण्ड (छां० ३.१४) में ब्रह्म का वर्णन है । अतः मध्य के इस प्रकरण में या ज्योतिर्वचन में ब्रह्म का ही ग्रहण है । इस (३.१३) से पूर्व के खण्ड (३.१२) में तो ब्रह्म का वर्णन नहीं है, अपितु गायत्री छन्द का वर्णन है – **''गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किञ्च''** (छां० ३.१२.१) आदि ।

सिद्धान्ती कहता है कि – ठीक है, पूर्वखण्ड में गायत्री का वर्णन है, पर गायत्री से २४ अक्षर वाला छन्दोविशेष का ग्रहण नहीं है, अपितु ब्रह्म (परमात्मा) का ही ग्रहण है । कैसे? **''ज्योतिश्चरणाभिधानात्''** (वेदान्त० १.१.२४) यहाँ (छां० ३.१२.१-४ में) गायत्री के चार पादों का कथन है । वे हैं – 'भूत, पृथिवी, शरीर और हृदय (मस्तिष्कगत स्थानविशेष) ।' इन चार पादों के सादृश्य से ब्रह्म के भी चार पादों (पूर्ण ब्रह्म) का ग्रहण होता है । इसी चतुष्पाद् पूर्णब्रह्म की महिमा को दिखाने के लिए उपनिषत्कार ऋषि पुरुषसूक्त के मन्त्र को उद्धृत करते हैं – **''तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषः। पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि''**(छां० ३.१२.६; तुलना ऋ०१०.९०.३, यजु० ३१.३, अथर्व० १९.६.३) **।** ये सभी चराचर भूत ब्रह्म के एक पाद में विद्यमान हैं, शेष अमृतमय तीन पाद द्युलोक में हैं । पुरुषसूक्त में ब्रह्म (परमात्मा) का ही

---

१६३. मनः कामना = मनस्कामना (रघुनन्दन शर्मा) ।

१६४. यह शैली अन्यत्र भी बहुत्र देखी जाती है । यथा – य एव एतस्मिन् मण्डले पुरुषस्तस्य भूरिति शिरः, एकं शिरः, एकमेतदक्षरं; भुव इति बाहू, द्वौ बाहू, द्व एते अक्षरे; सुवरिति प्रतिष्ठा, द्वे प्रतिष्ठे, द्व एते अक्षरे... (बृ० उप० ५.५.३; अपि च द्र० ५.५.४) । शिर एक होता है, इसलिए उसका नाम भी एकाक्षर (भूः) है, बाहू दो होते हैं अतः उनका नाम भी द्व्यक्षरक (भुवः) है, प्रतिष्ठा (पैर) दो होते हैं, अत एव उनका नाम भी द्व्यक्षरक (सुवः) है । स्पष्ट है अक्षरों की संख्या से भी द्योत्य अर्थ होता है । **कोई भी वैदिक संज्ञा यदृच्छया नहीं रखी जाती है ।**

प्रतिपादन है, इसमें कोई सन्देह ही नहीं है । यहाँ गायत्री के प्रकरण में इस मन्त्र को उद्धृत करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह महिमा गायत्री का नहीं, अपितु ब्रह्म की है । इतना ही नहीं इस उद्धरण के समनन्तर ही ऋषि स्पष्ट ही कहते हैं कि – **''यद्वै तद् ब्रह्म०''** यह वही ब्रह्म है, जो गायत्री द्वारा प्रतिपादित है । तभी तो यह कथन सत्य हो सकता है – **''गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किञ्च''** (छां० ३.१२.१) । अन्यथा २४ अक्षरों में बद्ध गायत्री छन्द से ये सभी भूत कैसे निर्मित होते ? कदापि नहीं । अतः यहाँ ब्रह्म का ही ग्रहण करना चाहिए । क्योंकि उसीसे जगत् की उत्पत्ति होती है[१६५] – **''न ह्यक्षरसंनिवेशनमात्राया गायत्र्याः सर्वात्मकत्वं सम्भवति । तस्माद्यद् गायत्र्याख्यविकारेऽनुगतं जगत्कारणं ब्रह्म तदिह सर्वमित्युच्यते ।**[१६६] **यथा– 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** (छां० ३.१४.१)'' (शांकरभाष्य, वेदान्त० १.१.२५) । इस प्रसंग का तात्पर्य यहाँ यह ग्राह्य है कि गायत्री (ब्रह्म) का उपासक भूतादि बाह्य पदार्थों (पादों) से क्रमशः अपने चित्त को हटाते हुए अन्त में अपनी आत्मा के अन्दर विद्यमान ब्रह्म (गायत्री) में ही चित्त को लगाना चाहिए । उपनिषद् के गूढभाव को वेदान्तकार कहते हैं – **''छन्दोभिधानान्नेति चेत् न तथा चेतोर्पणनिगदात्तथाहि दर्शनम्''** (१.१.२५) । गायत्री से अक्षरात्मक छन्द का ग्रहण करेंगे तो उसमें चित्त के अर्पण (ध्यान) का कथन सम्भव नहीं है । वह चित्तार्पण तो केवल ब्रह्म में ही सम्भव है ।

गायत्री में तो तीन ही पाद (३×८=२४ अक्षर) होते हैं । इसका चतुष्पाद ब्रह्म के साथ सादृश्य कैसा है ? गायत्री छन्द चतुष्पाद भी होता है ।[१६७] प्रत्येक पाद में छह-छह अक्षर होते हैं (४×६=२४ अक्षर)। इस प्रकार गायत्री छन्द चार पाद वाला और प्रत्येक पाद छह अक्षरवाला होता है, ऐसा ऋचा **(तावानस्य महिमा०** छां० ३.१२.६) ही कह रही है – **''सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री तदेतदृचाभ्यनुक्तम्** (छां० १.१२.५) । गायत्री के चार पाद ब्रह्म के चार पादों के उपलक्षक (द्योतक) हैं, यह स्पष्ट हो गया है। प्रत्येक पाद के ६-६ अक्षर (षड्विधात्व) किस-किस के उपलक्षक हैं ? इसका विवरण हमें माण्डूक्योपनिषद् में ब्रह्म के वाचक ओम्पद की व्याख्या में मिलता है । जिसका सार इसप्रकार है – ब्रह्म के प्रथमपाद (ओंकार के प्रथमाक्षर अकार) की छह विधाएँ – १. जागरितस्थान, २. बहिःप्रज्ञ, ३. सप्तांग, ४. एकोनविंशतिमुख, ५. स्थूलभुक् और ६. वैश्वानर (माण्डूक्य० ३) । ब्रह्म के द्वितीयपाद (द्वितीय अक्षर उकार) की छह विधाएँ– १. स्वप्नस्थान, २. अन्तःप्रज्ञ, ३. सप्तांग, ४. एकोनविंशतिमुख, ५. प्रविविक्तभुक् और ६. तैजस् (माण्डूक्य०४)। ब्रह्म के तृतीयपाद (तृतीयाक्षर मकार) की छह विधाएँ – १. सुषुप्तस्थान, २. प्रज्ञानघन (गूढप्रज्ञ), ३. एकीभूत (एकाङ्ग), ४. चेतोमुख, ५. आनन्दभुक् और ६. प्राज्ञ (माण्डूक्य० ५) । ब्रह्म के चतुर्थपाद (अमात्र)[१६८] की छह विधाएँ – १.अव्यपदेश्य, २. एकात्मप्रत्ययसार, ३. प्रपञ्चोपशम, ४. शान्त, ५. शिव और ६. अद्वैत (माण्डूक्य० ७) । इसप्रकार चतुष्पाद एवं षड्विध पूर्ण ब्रह्म (गायत्री) का ग्रहण ही छान्दोग्यकार ऋषि को अभिप्रेत है ।

शंकराचार्य अपने वेदान्तभाष्य में सुविस्तृतरूप से गायत्री से ब्रह्म का ग्रहण होता है, ऐसा प्रतिपादन कर अन्त में किसी पूर्वाचार्य के मत को भी उद्धृत करते हैं – **'' अपर आह – साक्षादेव गायत्रीशब्देन ब्रह्म प्रतिपाद्यते, संख्यासामान्यात् । यथा – गायत्री चतुष्पदा षडक्षरैः पादैस्तथा ब्रह्म चतुष्पात् । तथान्यत्रापि छन्दोभिधायी शब्दोऽर्थान्तरे संख्यासामान्यात् प्रयुज्यमानो दृश्यते । तद्यथा – 'ते वा एते पञ्चान्ये पञ्चान्ये दश सन्तस्तत्कृतम्' इत्युपक्रम्य 'सैषा विराडन्नादी'** (छां० ४.३.८) इति'' (वेदान्त० १.१.२५) । गायत्री छन्द अपने पादों एवं अक्षरों से ब्रह्म का उपलक्षक अर्थात् परोक्षतः वाचक नहीं है, अपितु साक्षात् ब्रह्म का वाचक है । इसमें हेतु यह है कि ब्रह्म में एवं गायत्री में पादशः एवं अक्षरशः पूर्णतया संख्यासाम्यता है (इसे पूर्व

---

१६५. जन्माद्यस्य यतः (वेदान्त० १.१.२) ।
१६६. यहाँ शंकराचार्य ने जगत् और ब्रह्म में भेद को माना है । 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' वचन में भी 'सर्वं इदं' से जगत् का ही ग्रहण करना चाहिए, न कि ब्रह्म ।
१६७. द्र० वैदिक छन्दोमीमांसा – अ० ९, पृ० १३३,१३७ ।
१६८. अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः.....शिवोऽद्वैत एवमोंकारः – माण्डू० १२ ।

में दिखा चुके हैं) । इसप्रकार संख्यादि साम्यता से तत्समसंख्याक अन्य विषय का अभिधान व ग्रहण करना केवल यहीं गायत्री प्रकरण में नहीं है, अपितु अन्यत्र (अन्य छन्दादियों में) भी इसीप्रकार देखा जाता है । जैसे कि– छान्दोग्य (४.३) में वर्णित है कि – **'' तौ वा एतौ द्वौ संवर्गौ वायुरेव देवेषु, प्राणः प्राणेषु''** (४.३.४) अर्थात् संवर्ग (लयस्थान)[१६९] दो ही हैं – १. अधिदेव में वायु है, क्योंकि अग्नि, सूर्य, चन्द्र और जल वायु में ही लीन होते हैं (४.३.१-२) और अध्यात्म (शरीर व इन्द्रियों) में प्राण है, क्योंकि वाणी, चक्षु, श्रोत्र और मन प्राण में ही लीन होते हैं (४.३.३) । इस प्रकार वायु और प्राण में क्रमशः अग्नि आदि और वागादि चार-चार के लीन होने से दोनों संवर्ग पांच-पांच के हो गये हैं । अर्थात् प्रलयावस्था में वायु एवं प्राण में उन चार-चारों का लय होता है और सर्गावस्था में उन्हीं दो से क्रमशः अग्न्यादि की तथा वागादि की उत्पत्ति होती है। ये दोनों पांच अधिदेव एवं पांच अध्यात्म तत्त्वों से युक्त संवर्ग (वायु और प्राण) अन्य-अन्य हैं । पर ये दोनों (वायु और प्राण) यथार्थतः एक ही (वायुस्वरूपक) होने से दोनों मिलकर दस हो जाते हैं। क्योंकि यह वायु सब (दस) का भक्षक (लयस्थान, संवर्ग) है । इसलिए इसे 'कृत' कहते हैं । यह कृतसंज्ञा द्यूतक्रीडा के सादृश्य से है । क्योंकि द्यूतक्रीडा में कृत, त्रेता, द्वापर और कलि संज्ञक चार पासे होते हैं । जिनके अंक क्रमशः चार, तीन, दो, और एक होते हैं । कृत के जीत लेने पर विजेता को दस अंक मिलते हैं, क्योंकि चार में तीनादि का अन्तर्भाव होने से उनका योग (४+३+२+१=) दस हो जाता है । इसलिये वह कृत सब का भक्षक (अन्तर्भावक) है । इसी सादृश्य से दसों के भक्षक वायु को भी 'कृत' कहा गया है । प्रकृत प्रसंग में कृत से द्यूतविषय का ग्रहण न कर दसों का भक्षक अर्थ का ग्रहण करना चाहिए । जो-जो दसों का भक्षक (अन्नाद) होता है, वह-वह कृत व अन्नाद (भक्षक) होता है ।[१७०] वायु अग्न्यादि दसों का भक्षक होने से 'कृत' कहलाया है । इसी संख्या की सादृश्यता से दस अक्षर के चार-चार पाद वाले विराट् छन्द[१७१] को अन्नादी कहा गया है – **''सैषा विराडन्नादी''**(छां० ४.३.८) । अर्थात् संख्या सामान्य (सादृश्यता) से प्रायः तत्समान संख्या वाले अन्य विषयों का ग्रहण करना आर्षसम्प्रदाय है । इसलिए गायत्री से भी संख्यासादृश्य से ब्रह्म का ग्रहण करना चाहिए, ऐसा वेदान्त सूत्रों (१.१.२४-२७) का आशय है । यही आशय अर्थात् छान्दोगत अक्षर या पाद के संख्यासादृश्य से तत्समसंख्याक तत्त्वों का परिशीलन कर तत्त्वों के ज्ञान को अधिकृत करना चाहिए । यही यजुर्मन्त्रों (९.३१-३४) का भी निगूढ अभिप्राय है ।

अभी तक छन्दों के द्वारा प्रतिपादनीय विषयों का संकेततः वर्णन किया गया है । यहाँ एक संदेह उत्पन्न होता है कि – मन्त्र के वर्ण्य विषय का प्रतिपादन करने वाले अग्नि आदियों को देवता कहा जाता है और देवता वाचक अग्नि आदि शब्द ही मन्त्रप्रतिपाद्य के प्रतिपादक होते हैं, पुनः छन्द विषयों का प्रतिपादन कैसे करेंगे? इसका समाधान यह है कि **छन्द केवल अक्षर परिमाण से युक्त वाक्यविशेषमात्र नहीं है, अपितु देवता के अंगभूत उपदेवता हैं ।** इसी को ऐतरेय ब्राह्मणकार (३.४७) 'देविका' कहते हैं ।[१७२] उनका कथन है कि- ''छन्द देवताओं के लिए हवियों का वहन करते हुए थक गये हैं, तो श्रमपरिहार केलिए याग के अन्त में 'देविकाओं' (छन्दों) के लिए भी हवियों का निर्वाप करें ।'' जिसके लिए हवियों का निर्वाप किया जाता है या आहुति दी जाती है, वह देवता ही कहलाता है ।[१७३] देविकाख्य छन्दों के लिए हवियों का उल्लेख है, तो छन्द देवता (उपदेवता) ही हुए हैं । अर्थात् इनका भी प्रतिपाद्य होता है, उसी का संकेत किया गया है। **अश्मा जागतम्** (शां०आ० ११.७) [अश्मा जगती छन्द का विषय है], **जागतं श्रोत्रम्** (मै०सं० ३.४.४), **जागताः पशवः** (मै०सं० ३.४.२), **जागतो वैश्यः** (ऐ०ब्रा० १.२८), **जागतो हि होता** (जै०ब्रा० १.३१८), **त्रैष्टुब्जागतो वा आदित्यः** (तां०ब्रा० ६.२३) इत्यादि ताद्धित निर्देशों से स्पष्टतया प्रमाणित होता है कि छन्दों

---

१६९. संवर्जनात् संग्रहणात् संग्रसनाद् वा (वायुरेव) संवर्गः (शंकरः, छां० उप० ४.३.१) ।

१७०. रावण दस दिशाओं (के भोग्य अन्न = राज्यादि) का विजेता होने से वह भी अन्न (भोग्यों) का भक्षक (अन्नाद) है । इसलिए 'दशानन' कहलाया है ।

१७१. चतुर्धा ह्येतस्याः (विराजः) दश दशाक्षराणि (मै०सं० १.११.१०) । दशाक्षरा विराट् (तै०सं० २.६.१.२)।

१७२. छन्दांसि वै देविकाः (तै०सं० ३.४.९.१; मै० सं० ४.३.५) । छन्दांसि देव्यः (शत०ब्रा० ९.५.१.३९) ।

१७३. यस्यै देवतायै हविर्गृह्यते सा देवता, न सा यस्यै न गृह्यते (शत०ब्रा० ९.२.१.९) ।

का भी प्रतिपाद्य विषय होता है ।

कामनाविशेष के लिए छन्दोविशेष का विधान किया गया है । यथा – **यदष्टाकपालो भवति गायत्र्यैवैनं ब्रह्मवर्चसेन पुनाति** (मीमांसा शाबरभाष्यम् १.४.११.१७, तु. तै०सं० २.२.५.३) । **''गायत्रचितं चिन्वीत ब्रह्मवर्चसकामस्य, त्रिष्टुप्चितं वीर्यकामस्य जगतीचितं पशुकामस्य'' इत्येवमादीनां कामसंयोगात्तत्तत्कामुकानामेव तत्तच्छन्दस्का ऋचोऽकामानां तदितरच्छन्दस्का एवेति व्यवस्था** (भास्कर भट्ट– संकर्षकाण्ड– २.१.३७) । इससे पूर्णतया स्पष्ट है कि उस–उस कामना को सिद्ध करने का सामर्थ्य अथवा उस कामना का विषय उसी छन्द में सम्भव है, अन्य छन्द में नहीं । इसीलिए यज्ञादियों में नियत छन्दस्क मन्त्रों के विनियोग की व्यवस्था की गई है । इतना ही नहीं छन्दों के परिवर्तन का निषेध भी किया हुआ ।[१७४] यथा– बृहस्पतिसव में **''गायत्रमेतदहर्भवति''** ऐसा कहा गया है । तो वहां प्राप्त त्रिष्टुप् और जगती छन्दों के अक्षरों का लोप करके गायत्री छन्द नहीं बनाना चाहिए, अपितु ऋग्वेद में पठित गायत्री ऋचाओं का ही ग्रहण करना चाहिए, ऐसा मीमांसादर्शन (८.३.१२-३६) में निर्णय किया गया है । इसके कारण को बताते हुए शबरस्वामी लिखते हैं कि **''अर्थाभिधानार्थश्च मन्त्रप्रयोगः''** (८.३.३६) । स्पष्ट है कि अभीष्टार्थ के प्रतिपादन का सामर्थ्य विशिष्ट छन्द में ही होता है। महर्षि दयानन्द ने भी यजुर्वेद (२१.१४) के भाष्य में इसका स्पष्ट संकेत दिया है– **''अनुष्टुप् छन्द इन्द्रियम् = ज्ञानादिव्यवहारसाधकम्''** अर्थात् इन्द्रियों से प्राप्तव्य ज्ञानादि व्यवहारों को जानने में अनुष्टुप् छन्द साधन है, उपयोगी है । यजुर्वेद भी कहता है कि- **''शरच्छैत्र्यनुष्टुप् शारद्यानुष्टुभ ऐडमैडान्मन्थी''** (यजु० १३.५७) अनुष्टुप् छन्द शरद् ऋतु तथा तत्सम्बन्धी विषयों का व्याख्याता है और ऐडम् = इडा, वाक् सम्बन्ध का व्याख्याता है । (ऐडान्मन्थी) इसप्रकार अनुष्टुप् छन्द से वाग्विज्ञान को जानने से व्यक्ति ज्ञान का मन्थन करने वाला (अनुसन्धाता, विशेषज्ञानी) बनता है।

अभी तक वैदिक छन्द के द्वारा किस किस विषय का प्रतिपादन किया जासकता है, इसका निरूपण किया गया है, इसकी पुष्टि लौकिक काव्य के लक्षणकार आचार्यों के वचनों से भी होती है । क्योंकि रुद्र, वीर, हास्य, करुण आदि रसों की अभिव्यक्ति किसी भी छन्द में व अलंकार में या स्वर में नहीं होती है । अभीष्ट रस की अभिव्यक्ति छन्दोंविशेष, अलंकारविशेष, स्वरविशेष एवं ध्वनिविशेषों में ही होती है । यहाँ तक कि विशिष्ट अक्षरों की योजना भी रसानुकूल होनी चाहिए, ऐसा काव्यलक्षणकार आचार्यों की स्पष्ट अभिमति है । उदाहरण के लिए यहाँ भरतमुनि विरचित 'नाट्यशास्त्र' के आधार पर हम इस विषय को प्रस्तुत कर रहें हैं । भरतमुनि १७ वें अध्याय में लिखते हैं कि – सभी प्रकार के काव्यों में भाव एवं रसों के अनुरूप ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत वर्णों का प्रयोग करना चाहिए (११७) । किसी विषय के स्मरण में, असूया, रोदन क्रियाओं में, वेदपाठ में प्लुत का प्रयोग करना चाहिए (११५) । स्मरण में 'आ' का, असूया में 'ऊ' का, रोदन में 'हा' का और वेदाध्ययन में 'ओम्' का उच्चारण करना चाहिए (११६) । बीभत्स तथा करुण रसों में गुरु अक्षरों वाली रचना हो, रुद्र एवं वीर रसों से करुण रस के वर्णन में भी यथाशक्य गुरु अक्षरों की रचना हो (१०८) । शृङ्गाररस में रूपक एवं दीपक अलंकार का और आर्यावृत्त तथा कोमल वृत्तों (छन्दों) का प्रयोग करना चाहिए (१०९) । वीररस में संयुक्त वर्णों का प्रयोग अधिक हो और उसमें अतिजगती एवं संकृति जैसे वृत्तों (छन्दों) का प्रयोग होना चाहिए (११०) । युद्ध तथा उपद्रव (संकट) के वर्णन में उत्कृति छन्द का और करुण रस में शक्वरी एवं अतिधृति छन्दों की योजना करनी चाहिए (१११) । वीररस केलिए उपयुक्त छन्द रौद्ररस के लिए भी उपयोगी हैं । शेष रसों में अर्थानुकूल, यथोचित छन्दों का प्रयोग करना चाहिए (११२) ।

अभीष्ट रस को प्रकट करने केलिए षड्ज, ऋषभ, गान्धार आदि एवं उदात्तादि स्वर भी अत्यन्त उपयोगी हैं । इस विषय में भरतमुनि १९ वें अध्याय में लिखते हैं कि– ''हास्य एवं श्रृंगार रसों में मध्यम एवं पञ्चम स्वर का और वीर, रुद्र तथा अद्भुत रसों में षड्ज तथा ऋषभ स्वरों का प्रयोग करना चाहिए (३८) । करुणरस में गान्धार तथा निषाद स्वर का और बीभत्स एवं भयानक रस में धैवत स्वर का प्रयोग

---

१७४. छन्दपरिवर्तन के विहितस्थलों को छोड़ कर ।

होना चाहिए (३९) ।[१७५] हास्य तथा श्रृंगार रसों में स्वरित तथा उदात्त स्वर का; वीर, रौद्र एवं अद्भुत रसों में उदात्त एवं कम्पित स्वर का; करुण, वात्सल्य तथा भयानक रसों में अनुदात्त, स्वरित तथा कम्पित स्वरों का प्रयोग होना चाहिए (४३) ।'' इन स्वरों के उच्च, नीच, द्रुत, विलम्बित आदि छह अलंकार भी होते हैं। इनके विषय में भरतमुनि आगे लिखते हैं कि– ''दूरस्थ व्यक्ति के सम्बोधन में, त्रास और बाध आदि में उच्च स्वर का; आक्षेप, युद्ध, कलह, विवाद, अमर्ष, छीनना, क्रोध, शौर्य, अहंकार, तेज, रूखा उत्तर, डांटना और रोना आदि में दीर्घ स्वर का; निर्वेद, ग्लानि, शंका, चिन्ता, औत्सुक्य, दीनता, व्याधि, तीव्रघाव, मूर्छा, मद और गूढार्थक शब्दों के प्रयोग में मन्द्रस्वर का; स्वाभाविक सम्भाषण, व्याधि, यात्रा के थकावट में, व्यक्ति के गिरने में, मूर्छित होने में नीच स्वर का; सान्त्वना, प्रिय के प्रस्ताव की अस्वीकृति, भय, शीतज्वर, त्रास, आवेग आदि में द्रुत स्वर का; श्रृंगार करुण, वितर्क, विचार, अमर्ष, असूया, अव्यक्तवाणी, लज्ञा, चिन्ता, तर्जन, आश्चर्य, दोषकथन, दीर्घरोग, पीड़ा आदि में विलम्बित स्वर का प्रयोग करना चाहिए (४५) ।'' इसी प्रकार छठे अध्याय (श्लोक ४४–४६) में रसों का वर्ण एवं देवता के साथ सम्बन्ध भी दिखाया गया है । जो कि इसप्रकार है –

रस		**वर्ण**		**देवता**
१. श्रृंगार	–	श्याम	–	विष्णु
२. रौद्र	–	रक्त	–	रुद्र
३. वीर	–	गौर	–	महेन्द्र
४. बीभत्स	–	नील	–	महाकाल
५. हास्य	–	श्वेत	–	प्रमथ
६. करुण	–	कपोत	–	यम
७. अद्भुत	–	पीत	–	ब्रह्मा
८. भयानक	–	कृष्ण	–	कालदेव

इत्यादि अनेकों विषयों के लिए जिज्ञासु नाट्यशास्त्र के साथ काव्यलक्षण ग्रन्थों का अवलोकन करें। क्योंकि वेद भी एक महाकाव्य है, काव्यों का काव्य है, आदि काव्य है । जब तक काव्यलक्षण अवगत नहीं होंगे, तब तक काव्य (वेद) का आत्मा बुद्धिगत नहीं होगा । वैदिक वाङ्मय में कृतभूरिपरिश्रम विद्वान् भी इस ओर ध्यान नहीं दिया, ना ही दे रहें हैं । सम्मान्य स्व० श्री० वागीश्वर वेदालंकार जी ने इस ओर विशेष ध्यान दिया, वेदकाव्य के वैदिक काव्यलक्षणों को मूर्तरूप देना आरम्भ किया और उन्होंने उस ग्रन्थ का नाम **'वैदिक साहित्य सौदामिनी'** रखा । परन्तु उनके दिवङ्गत होने से, दुर्भाग्य से वह ग्रन्थ अपूर्ण ही रह गया । उनके मस्तिष्क में सम्पूर्ण रूप क्या रहा होगा हमें ज्ञात नहीं है, वे विचार प्रकट होने से पूर्व ही कालगर्भ में विलीन होगये हैं । संस्कृत के कवित्वगुण से सम्पन्न एवं वैदिकवाङ्मय के परिज्ञाता विद्वान् इस ओर विशेष ध्यान दें तो वैदिक परम्परा का महान् कार्य होगा । इस ओर वैदिक विद्वानों की उपेक्षादृष्टि के उल्लेख से ही वागीश्वर जी ने अपने ग्रन्थ का शुभारम्भ किया है –

सन्त्येके श्रुतिपाठमात्रजरठाः साहित्यविद्वेषिणो,
ये साहित्यपरायणाः सहृदयास्तेषां न वेदे गतिः ।
एकस्मिन्नसति द्वयोरपि गुणाभिज्ञे श्रुतिः सीदति,
मर्मज्ञे पुरुषे द्वयोर्हि घटते योगो मणिस्वर्णयोः ।।

अस्तु; छन्दादि वेदार्थ में किस प्रकार उपयोगी हो सकते हैं, इस विषय में मैंने इस लेख में संकेत मात्र ही किया है । इसमें और अधिक गम्भीर अध्ययन करने की महती आवश्यकता है ।

रसवद्वाचा वदति य एवं वेद (तां०म०ब्रा० ५.७.३) ।[१७६]

१७५. द्र० भरतनाट्यशास्त्र २०.६ ।

१७६. एवमर्थं यो वेद जानाति स वाचा रसवत् रसयुक्तमेव वदति वचनस्य सारवत्वेन ग्राह्या वाग्भवतीत्यर्थ : – सायणस्तत्रैव ।